गांधी जन्म-शताब्दी प्रकाशन

# गांधीजी और गो-सेवा

● गाधीजी के सिद्धान्तो के अनुसार
गो-सेवा का विवेचन

१९६९
सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

गांधी स्मारक-निधि, राजघाट, नई दिल्ली
के सहयोग से
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
द्वारा प्रकाशित



•

पहली बार १९६९
मूल्य एक रुपया

•

मुद्रक
साहित्य प्रिंट द्वारा
राष्ट्रभाषा प्रिंटर्स
दिल्ली

# प्रकाशकीय

गाधी-जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य मे हमने जो विशेष प्रकाशन किये है, उन्हीमे से यह एक है। अपने रचनात्मक कार्य-क्रम मे गाधीजी ने गो-सेवा को प्रमुख स्थान दिया था। लेकिन गो-सेवा की उनकी मान्यता आज की प्रचलित मान्यता से भिन्न थी। वह गाय को केवल पूजा की दृष्टि से नही देखते थे, अपितु वह चाहते थे कि गाय भारतीय लोक-जीवन के लिए उतनी ही उपयोगी बने, जितनी वह प्राचीन काल से रही थी।

एक अनुभवी व्यक्ति के द्वारा लिखी होने के कारण यह पुस्तक न केवल गो-सेवा सबधी तथ्यो को प्रकाश मे लाती है, अपितु उस विषय मे वैज्ञानिक दृष्टि भी प्रदान करती है।

इस पुस्तक की पाण्डुलिपि गाधी शाति प्रतिष्ठान ने तैयार करा कर दी है और इसका प्रकाशन गाधी स्मारक निधि के सहयोग से हो रहा है। हम इन दोनो सस्थाओ के आभारी है।

हमे विश्वास है कि पाठक इस पुस्तक को चाव से पढेगे और इसके अध्ययन से लाभान्वित होगे।

—मंत्री

# दो शब्द

गाधीजी भारत की भूमि के स्पन्दन की अनुभूति कर सकनेवाली विभूति का नाम है। उनके व्यक्तित्व के द्वारा भारत ने अपनी चिर-संचित सास्कृतिक सम्पदा का मूल्य पहचाना। जिन्दगी की सचाई उनके जरिये हर पहलू मे प्रकट हुई। मानव मानव के बीच सम्बन्ध, समानता और सौहार्द के बने, यह तो उनका जीवन-विरुद था ही, परन्तु मनुष्य ससार के अन्य प्राणियो और वनस्पतियो के साथ गुथा हुआ एक अश है, जिसका विकास सबके विकास के साथ समाया हुआ है, यह भी उन्हे सहज ही स्पष्ट हो गया था।

अलबर्ट श्वाइट्जर जैसे मानवतावादी ने जिस भावना को जीव-मात्र के प्रति समादर की सज्ञा दी है, वह भारत की सनातन परम्परा है। जीव-मात्र के साथ मनुष्य-प्राणी का सम्बन्ध प्रतिद्वद्वी के रूप मे प्राकृतिक नियमानुसार है ही, पर सस्कृति का उद्गम वही से शुरू होता है, जहा प्रतिद्वद्विता की सीढी पार कर मनुष्य सहजीवन की ओर बढता है। आज की परिस्थिति मे तो प्रतिद्वद्विता मानव की विज्ञान की प्रगति के साथ विनाश और विकृति की ओर जा रही है।

ऐसे मे करुणा की चीत्कार गाधी के कठ से निकली और मनुष्य और प्राणियो के बीच प्रेम की श्रृखला कायम करनेवाली गोमाता को उन्होने 'करुणा की कविता' कहा।

भावना और क्रिया इन दोनो का सामजस्य अविलम्ब साधने की क्रिया गाधीजी मे थी और उसे सामाजिक रूप देने की कला भी वह

जानते थे। इसीके द्वारा उन्होने परम्पराओ की जडो मे क्राति के बीज रोपे। गो-सेवा की परम्परा को भी इसी प्रकार उनके द्वारा संसृजि-परिवर्तन का रूप मिला। शाकाहारी भारतीय समाज मे, जहा दूध का एकमात्र प्राणिज प्रोटीन ग्राह्य है और गो-सन्तति ही भारतीय कृषि का आधार है, उन्होने वैज्ञानिक गो-सेवा की नीव रखी। इस कार्य मे उनके सहायक रहे इस पुस्तक के लेखक श्री पारनेरकरजी। तात्कालिक लाभ की मृग-मरीचिका मे ही जब सामाजिक चिन्तन लगा है नब दूरगामी मानव-प्राणी सम्बन्ध का वैज्ञानिक विवेचन बडा महत्व रखता है। मानव और गाय का परस्पर पारिवारिक सम्बन्ध उसी दिशा मे मनुष्य को बढाने के लिए प्रेरित करने का प्रयोग है। यह पुस्तक केवल हमारी गो-भक्त परम्परा को ही वैज्ञानिक नीव नही देगी, बल्कि इस सम्बन्ध मे विश्व-चितन मे भी सहायता देगी, ऐसा मुझे विश्वास है।

गाधी स्मारक निधि,
नई दिल्ली

— देवेन्द्रकुमार गुप्त
मन्त्री

# विषय-सूची

# गांधीजी
## और
# गो-सेवा

# गांधीजी के प्रयोग

सौ वर्ष पूर्व गाधीजी का जन्म पोरवन्दर (सौराष्ट्र) मे हुआ। गाधी-कुटुम्ब एक प्रतिष्ठित वैष्णव कुटुम्ब था और कट्टर निरामिप था। फिर भी मित्रो के आग्रह से, शरीर की तन्दुरस्ती बढाने के नाम पर, उन्होने चोरी से मासाहार शुरु किया। किन्तु थोडे ही समय मे उनका वाल-मन विद्रोह कर गया। मा-वाप को अधेरे मे रखकर कोई काम कैसे किया जा सकता है? उन्होने तुरन्त मासाहार वद कर दिया।

पढाई के लिए जब लन्दन जाने का प्रस्ताव आया, तो बहुत देर तक मना करने के वाद एक शर्त पर मा ने अपनी अनुमति दी। विदेशो मे लोगो का जीवन कैसा पतित और अनैतिक होता है, उसकी कहानिया उनके कानो तक पहुच चुकी थी। उन्हे सुनकर उनका जी काप रहा था। इसलिए वह उन्हे एक जैन साधु के पास ले गई और उनके सामने तीन शपथे दिलाई—मद्य, मास और पर-स्त्री से वचकर रहना। इन शर्तों के कारण वह लन्दन मे सचमुच अनेक प्रलोभनो से वचे।

निरामिप भोजन उनके लिए एक धार्मिक सिद्धान्त वन गया। इसका मुख्य कारण था प्राणिमात्र के विपय मे उनके मन मे अत्यन्त आदर और पवित्र भाव। स्वास्थ्य-सम्बन्धी विचार भी इनके पीछे थे ही। सिद्धान्तत. वह निरामिपाहार के पूरी तरह कायल हो गये और वडे उत्साह के साथ इसका प्रचार भी करते रहे।

उन्होने अनुभव किया कि मासाहार के धार्मिक, वैज्ञानिक तथा व्याव-हारिक पहलू है। मनुष्य या प्राणियो मे प्राधान्य का प्रश्न यह नही है,

चाहिए कि वह उनका भक्षण करे, किन्तु उसे दूसरे प्राणियो को सरक्षण भी देना चाहिए और एक-दूसरे का पूरक बनना चाहिए। उन दिनो तीन प्रकार के शाकाहारी लोग होते थे। एक वर्ग सब प्रकार के प्राणियो तथा पक्षियो का मास निषिद्ध मानता था, किन्तु मछली और अडे ले सकता था। दूसरे वर्ग के लिए सब जीवित प्राणियो का मास वर्ज्य था, किन्तु अडे ले सकता था और तीसरे वर्ग के लोगो के लिए सब प्रकार का मास, अडे, यहातक कि दूध भी वर्जित था। गाधीजी ने सब प्रकार का मासाहार छोड दिया और आगे चलकर दूध का भी त्याग किया। उनकी मान्यता थी कि माता के दूध के अतिरिक्त किसी भी प्राणी का दूध लेना ठीक नही होगा। किन्तु जब वह हिन्दुस्तान आये, तो उनके विचारो मे कुछ परिवर्तन हुआ। खेडा-सत्याग्रह के समय गाधीजी बहुत बीमार पड गये और डाक्टरो ने सलाह दी कि स्वास्थ्य के लिए दूध आवश्यक है। यदि दूध नही लेते तो उनके बचने की आशा नही थी। सेवा-कार्य तो बहुत महत्त्वपूर्ण था और उसे निभाना था। इसलिए उन्होने दूध न लेने का आग्रह छोडा। व्रत लेने का यह भी एक कारण था कि भारत मे जिस हिंसक पद्धति से पशु पाले जाते है, दूध-उत्पादन किया जाता है, वह उनके लिए असह्य था। मित्रो ने समझाया कि व्रत लेते समय उनकी दृष्टि मे गाय-भैसे थी। बकरी का तो उन्होने विचार ही नही किया था। इसलिए बकरी का दूध लेने से व्रत नही टूटेगा। गाधीजी मान गये और बकरी का दूध लेना शुरु किया। उनका स्वास्थ्य ठीक हुआ और फिर से वह अपना काम करने लगे। उनकी देखा-देखी और लोग भी दूध का त्याग करने की सोचते थे। गाधीजी ने उन्हे अनुकरण करने मे सावधान किया और कहा कि दूध का त्याग करने के पहले किसी अच्छे डाक्टर की सलाह ली जाय और यदि दूध छोडने से स्वास्थ्य पर असर न होता हो तो ही दूध का त्याग किया जाय। उनका यह भी मानना था कि अशक्त हाजमे के मरीज तथा बच्चो के लिए दूध जैसा शक्ति देनेवाला दूसरा कोई पदार्थ नही

करने के वाद उसके वारे मे वह गहराई से सोचते थे और प्रश्न का हल खोजने के लिए प्रयत्न करते थे। सावरमती-आश्रम की गोशाला मे गो-प्रयोग किये गए। उसी समय एक चर्मालय की भी स्थापना की गई। सवर्धन-सम्वन्धी आश्रम मे गोशाला तो थी ही। उसीमे प्रयोग शुरू हुए। प्रयोग-सवधी कुछ तथ्य निश्चित किये गए। जबतक गाय स्वाश्रयी नही होगी, अपने पूरे जीवन का भार नही उठा सकेगी, तवतक उसकी अवहेलना होती ही रहेगी। गाय की दूध देने की शक्ति वढानी होगी, उसके बछडे अच्छे काम लायक वैल वने इसका प्रयत्न करना होगा, खाद का पूरा उपयोग करके उसकी देखभाल के खर्चे मे कमी करनी होगी। इतना ही नही मृत्यु के वाद उसके शरीर का पूरा उपयोग कर आमदनी वढानी होगी। चूकि देश गरीव है और गाय को तो गरीवो के हाथो मे ही रहना है, इसलिए प्रयोग मे वही तरीके अपनाये जाय जो भारत का औसत गोपालक उपयोग मे ला सकता हो। अधिक धन खर्च करने की गुजाइश नही है। गोसेवा का प्रश्न बहुत उलझा हुआ है। उसके साथ केवल अर्थशास्त्र का ही सबध नही है, समाज-शास्त्र का सवध भी है और धार्मिक भावनाए गुथी हे। इसीलिए प्रयोग करते समय सतर्क रहना होगा, ज्ञान तथा त्यागपूर्वक काम करना होगा। गाधीजी खुद तो अनेक प्रवृत्तियो मे गुथे हुए रहते थे, किन्तु सेवको के लिए आग्रह रखते थे कि वे निरतर गोसेवा-सम्वन्धी चिंतन ही करते रहे, दूसरे सव झमेलो से निर्लिप्त रहे।

सेवको के कार्य मे जव कभी अडचने पैदा होती थी तव गाधीजी से समय पर मार्गदर्शन मिल जाता था। गोशाला का वारीक-से-वारीक कार्य वह गहराई से देखते थे और सेवक रास्ते से भटके, इसके पहले ही उन्हे सावधान कर देते थे। प्रयोग शुरू करने के पहले वस्तु-स्थिति का पूरा अध्ययन करना उनका नियम था। चूकि आश्रम-गोशाला मे गीर गायो का सवर्धन करना था, इसलिए उन्होने सौराष्ट्र की परिस्थितियो का पूरा अध्ययन करवाया। पूरे सौराष्ट्र मे करीव दो महीने तक मैने पैदल प्रवास किया। काफी लाभ हुआ। उस क्षेत्र-दर्शन

के कारण आगे के कार्य की रूपरेखा बनी। हमारे आज के कितने ही लोग गो-संवर्धन के कार्य मे पडे है। उनके लिए गाधीजी की यह बात (क्षेत्र-दर्शन की बात) बहुत लाभदायी हो सकती है।

दाडी-यात्रा मे जाने के बजाय आश्रम की गायो को सम्हालना, छोटे बच्चे जो आश्रम मे रह गये थे उन्हे सम्हालना ज्यादा कठिन और महत्व का था, इसलिए हम कुछ लोगो पर यह भार सौंप दिया गया। उनकी अपेक्षा थी—एकाग्रता से इस कार्य मे लगे रहो। आगे चलकर जब कूच की तैयारी हुई तब गाधीजी ने समझाया कि आश्रम की समाप्ति के बाद जरूरत पडे, तो गायो के साथ रहू और जबतक सरकार हस्तक्षेप न करे, मुझे पकड न ले, तबतक गायो को लेकर देश-भर मे घूमता रहू। उसका जादू-जैसा असर होगा, ऐसा वह मानते थे। किन्तु आखिर मे तय हुआ कि सब गाये एक मित्र को सौंप दी जाय और हम लोग अन्तिम सग्राम मे जुट जाय। गाधीजी इतनी गहराई से गोसेवा के बारे मे सोचते थे और इस कार्य को बहुत महत्वपूर्ण मानते थे।

सेवाग्राम-आश्रम की स्थापना करने के बाद फिर गोसेवा का प्रयोग आगे चला। गहराई मे सोच सकू, नित-नये प्रयोग कर सकू, इसलिए मैं फिर से गाधीजी के पास सेवाग्राम पहुच गया। परिस्थिति कुछ अजीब-सी थी। सेवाग्राम भारत का एक सर्व-सामान्य देहात था। ग्रामवासियो का मुख्य पेशा खेती था, पशुपालन भी करते थे। किन्तु गावो मे इतनी गाये होते हुए भी आश्रम के लिए गाय का दूध वर्धा से मगाना पडता था।

साधारण तौर से पनप नही पाती। देहाती किसान के पास न तो उनके लिए पूरे साधन होते है, न ज्ञान। इसलिए गोशाला की वृद्धि करते समय यह तय किया गया कि स्थानीय गायो मे से ही चुनाव किया जाय और उनके सुधार के प्रयत्न किये जाय। यह पता चला कि स्थानीय गवलाऊ जाति की गाय का सवर्धन किया जा सकता है, उन्हे सुधारा जा सकता है। कुछ समय के बाद एक खासा झुड तैयार हो गया। वहा आस-पास इस प्रकार की गाय के बारे मे कुतूहल बढा। कुछ नये झुण्ड निर्माण होने लगे। गाधीजी के इस आग्रह के कारण ही आज गवलाऊ जाति को भारत की प्रमुख नस्लो मे स्थान प्राप्त हुआ है और अच्छा दूध देनेवाली और खेती के लिए सुन्दर बछडे पैदा करनेवाली एक नस्ल कायम हो गई है।

आश्रम बढता गया और दूध की माग भी। लेकिन आश्रम की गोशाला के विस्तार की कुछ सीमा थी। इस प्रकार अपनी ही गोशाला बढाने से दूध का प्रश्न तो हल हो जाता, किन्तु उससे समाज-सेवा का क्या होता? बढते दूध की माग पूरी करने के लिए किसानो को गाय का दूध पैदा करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। कुछ किसान अपनी गायो को दुहने लगे और दूध की बिक्री से उन्हे कुछ आमदनी होने लगी। किसानो के लिए यह एक सहायक धधा सिद्ध हुआ, किन्तु दूध की ज्यादा-से-ज्यादा कीमत मिले, गाय और बछडे की देखभाल ठीक हो, इसलिए उनके दाने-पानी की ओर कार्यकर्ताओ का ध्यान गया। दूध की कीमत का कुछ अश दाने के रूप मे देने की व्यवस्था की गई।

गाय का वश सुधरे, इस हेतु आश्रम मे शुद्ध नस्ल के साड रखे जाने लगे। उनका उपयोग देहातियो के लिए होने लगा। आश्रम-गोशाला की ओर से बीमार पशुओ की देखभाल का भी प्रबध किया गया। पशु-पालक .से भी सम्पर्क बढा। अनुभव हुआ कि लोभ के वश दूध मे मिलावट होती है। दूध के गुण के अनुसार दूध के दाम देने की योजना बनी। कार्य के प्रति लोगो का विश्वास बढे, गोशाला के प्रति सद्भावना

पैदा हो, इसलिए गाव के कुछ थोडे पढे-लिखे कार्यकर्ताओ को गोशाला के व्यवसाय मे स्थान दिया गया और दूध की परीक्षा तथा पशुओं की देखभाल आदि उन्हीके द्वारा की जाने लगी।

यह सब करते समय खर्च पर भी नियत्रण था। गाधीजी नुकसान सहन करने को तैयार नहीं थे और न हम लोगो को कर्ज आदि देने के झझट मे पडना चाहते थे। हम मानते थे कि कर्ज लेने-देने से सबध ज्यादा दिन तक मधुर नही रहते। सेवा-कार्य मे बाधा आती है। इसलिए प्रथा शुरू की कि पशुपालक को मिलनेवाले दूध के दाम मे से ही एक कोष बनाया जाय और उसका उपयोग सहकारी ढग से गाय आदि खरीदने मे हो। कुछ समय मे एक खासी रकम इकट्ठी होगी और कार्य करने मे आसानी होगी। दूध अच्छी मात्रा मे इकट्ठा होने लगा। इतने दूध का तो आश्रम मे उपयोग नहीं हो सकता था, इसलिए दूध के अनेक पदार्थ बनाये जाने लगे। साबरमती-आश्रम मे खोया बनाया जाता था, किन्तु आहार एव आश्रम की घी की माग पूरी करने के लिए ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा। दूध ज्यादा समय रख सके, इसलिए देहाती ढग से 'कडेन्स' दूध बनाना भी शुरू किया गया। प्रयोग बहुत छोटे प्रमाण मे थे, किन्तु इन अनुभवो का असर काफी हुआ।

गोपालन-सबधी जो अनुभव प्राप्त होते थे, उन्हे गोपालको तक पहुचाने के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। कुछ नौजवान गोशाला मे रहकर अनुभव प्राप्त करने लगे। वे अपने खर्च का काफी बडा हिस्सा गोशाला तथा खेती मे काम से निकाल लेते थे।

स्वाधीनता और स्वावलवन हम खोना नही चाहते थे। सरकार के अनुरोध से इतना ही स्वीकार किया कि इस पद्धति से देहातो मे कार्य चलाने के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय। प्रतिवर्ष सौ विद्यार्थियो को शिक्षा देने का कार्य स्वीकार किया गया। कुछ समय वाद सरकार की ओर से माग हुई कि मध्य प्रदेश के देहातो मे जो कार्यकर्ताओ का जाल फैलाने की वात है उसका नियन्त्रण किया जाय। १९४८ की शुरुआत मे गाधीजी ने मुझे यह कार्यभार लेने की आज्ञा दी। सेवाग्राम-आश्रम गोशाला का कार्य चलता रहा। कुछ दिनो के वाद यह गोशाला सर्व-सेवा-सघ मे विलीन हो गई। सावरमती-आश्रम की गोशाला अपने ढग से चल रही है और उस गोशाला ने काफी अनुभव प्राप्त कर लिया है।

गोशाला के साथ-साथ चर्मालय के प्रयोग चलते रहे। सावरमती-आश्रम मे एक चर्मालय की स्थापना की गई। वाजार से मृत चर्म खरीदे जाते थे, उनको कमाया जाता था और चप्पल-जूते तथा देहातो मे विकनेवाली अन्य वस्तुए वनाई जाती थी। वर्धा आने के वाद नालवाडी मे एक चर्मालय की स्थापना की गई। इसे हरिजन आन्दोलन का भी एक भाग माना गया। कत्ल किये गए जानवर का चमडा अपने उपयोग मे न लाना पडे, इसलिए मृत चर्म का उपयोग वढाना जरूरी समझा गया। ऊचे दर्जे की चमडा-पकाई, रगाई, क्रोम-पकाई, केगदार-पकाई आदि की व्यवस्था की गई। मृत शव का पूरा उपयोग हो, इस हेतु कुछ मृत पशु-केन्द्र खोले गये। इन केन्द्रो की नीति यह रही है कि मृत पशु के चमडे, मास, हड्डी इत्यादि का अधिक-से-अधिक उपयोग किया जाय, ताकि उतनी रकम गाय से होनेवाले उत्पादनो मे वढ सके। चर्मालय मे कत्ल की गई गाय-भैस और वैल का चमडा काम मे नही लाये। अन्य पशुओ के वारे मे यह नियम नही रहा, क्योकि उनका कत्ल रोकना सभव नही था।

# पशु-कल्याण

अपने लोगो के लिए त्याग करना और उनके उत्कर्प के प्रयत्न करना, यह मानव-स्वभाव है। अपनो और परायो मे वह सदा से अंतर करता आया है। अपनो के सुख के लिए वह दूसरो का अहित करने मे नही हिचकिचाता और कभी-कभी इसे अपना धर्म भी मान लेता है। इसी कारण समाज मे झगडे होते है, युद्ध छिडते है, दोनो पक्षो की काफी वर्वादी होती है, यह जानते हुए भी कि यह सव सदियो से चलता आया है। समय-समय पर समाजवेत्ता हमे चेतावनी देते रहे है, किन्तु उससे अन्तर इतना ही पडता है कि अपनो की परिधि कुछ वढ जाती है। व्यक्ति अपने साथ अपने कुटुम्व को जोड लेता है, फिर जातिया वन जाती हे। एक धर्म के लोग एकत्र होते है। इसी प्रकार समाज, देश आदि का विचार होने लगता है। किसी छोटे-से कारण से एक सम्प्रदाय या राष्ट्र दूसरे पर आक्रमण करता है, उसे गुलाम वनाने का प्रयत्न करता हे। इन सवके पीछे एक ही भावना काम करती है। दुनिया मे सुख के साधन परिमित है और सुख की चाह अपरिमित है। सुख-साधन सवको एक-सरीखे मिल नही सकते, इस कारण उनका अपनो के लिए ही संग्रह किया जाय और दूसरो से वे छीन लिये जाय, ऐसी प्रवृत्ति चलती है।

गाधीजी इन विकारो से वहुत ऊचे उठ गये थे। उन्होने अपना ममत्वभाव समूची मानव-जाति तक फैलाया था। सव फिरको, धर्मो, राष्ट्रो के व्यक्ति या समुदाय को वह अपना ही मानते थे और उनके भले

का उतना ही विचार रखते थे जितना स्वकीयो के हित का। उनके आश्रम मे सब धर्म, जाति और राष्ट्र के लोग स्वेच्छापूर्वक रहते थे। सनातनी हिन्दू, हरिजन, ईसाई, मुसलमान, अग्रेज, जर्मन और जापानी सबके लिए आश्रम खुला था।

किन्तु गाधीजी को इतने से ही सतोष नही था। वह तो प्राणिमात्र और जीवमात्र को अपने बधुत्व मे लाना चाहते थे। उनके दुःख से दुखी होते थे और उन दुखो को दूर करने का प्रयत्न करते थे। सेवाग्राम-आश्रम मे सतरे का एक बगीचा था। फल आने के कुछ समय पहले पानी बन्द करने का रिवाज था। इससे फल अधिक लगते है और मीठे भी अधिक होते है। एक वर्ष इसी ऋतु मे एक रोग आया। कुछ पेड मर गये। गाधीजी ने जब यह देखा तो उन्हे काफी दुःख हुआ। कहने लगे, "यदि मुझे कोई पानी बगैर रखे और प्यास से मेरी मृत्यु हो तो तुम्हे कैसा लगेगा ? 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे,' यह सदा याद रखो।"

इतनी गहराई से सोचनेवाले गाधीजी प्राणी-कल्याण के बारे मे न सोचे, यह कैसे हो सकता था ? किन्तु वह व्यवहार-कुशल भी थे। वह मानव की शक्ति और सीमा दोनो को जानते थे। जीवमात्र की रक्षा का भार हम नही उठा सकते। जिन प्राणियो से हमारा सीधा सबध नही आता, जिन्हे अपने स्वार्थ के लिए हमने पाला नही, उनका भार सृष्टि-कर्ता पर ही छोड देना उचित होगा। किन्तु जिन प्राणियो को हमने स्वार्थवश पाला, उनके नैसर्गिक जीवन मे हेरफेर किया, उनकी रक्षा करना हमारा धर्म हो जाता है। हम यह न करे, तो कृतघ्न कहलायेगे। इसलिए हम अपनी शक्ति तोल ले और उसीके प्रमाण मे अपना बोझ बढाये। मनुष्य का अपना स्वार्थ भी है। वह चाहेगा कि जिनका बोझ उसे उठाना है वे ज्यादा-से-ज्यादा स्वाश्रयी बने। उनकी सेवा मनुष्य को प्राप्त हो और सकट के समय उनकी रक्षा की जा सके। इसी कारण अबतक हमने अपनेको गाय तक सीमित रखा है। उसीके द्वारा दूसरे प्राणियो की सेवा करेगे। सेवा का शास्त्र पनपेगा और शक्ति बढने पर

सेवा का दायरा बढ़ाते रहेंगे।

गाय की सेवा दूसरे प्राणियो की उपेक्षा नही है। यह हमारी सीमित शक्ति की सूचक है। दूसरे प्राणियो की हम सेवा कर सके, किन्तु किसी भी कारण उनके सुख मे बाधक न हो, यह निरतर ध्यान मे रखना होगा। भारतीय समाज ने गाय को मूक प्राणियो का प्रतीक माना और उसे अपने कुटुब मे प्रवेश दिया। हमारे पूर्वजो ने देखा कि गाय मनुष्य-जाति की सच्ची सहचरी है। वह समृद्धि की जननी है। उससे हमे दूध मिलता है। उसीके कारण खेती का विकास भी हो सका है, उसीके कारण हमे शाकाहारी बनने मे मदद मिली है। अहिंसक और शोषणहीन समाज के लिए शाकाहार आवश्यक हो जाता है। गाधीजी ने एक जगह हिन्दू-धर्म की चर्चा करते समय कहा है कि मुझे गोरक्षा मनुष्य के विकास मे सबसे अलौकिक वस्तु लगी है।

जो प्राणी हिंसा करते है, उनके प्रति आदमी ने शिकार-धर्म बनाया है। हिसा और नुकसान करनेवाले प्राणियो को देखते ही मार दिया जाता है। फिर भी शिकारियो ने कितने ही नियम बनाये है। शेर सोता हो तो उसे मारा नही जाता। आवाज देकर उसे जगाया जाता है और फिर उससे लडाई की जाती है। मादा गर्भिणी हो तो उसको मारा नही जाता। वे दूर जगल मे मनुष्य-बस्ती के परे हो, तो वहा जाकर या उन्हे मनुष्य-बस्ती के पास लाकर मारना, शिकार-धर्म मे नही आता। जिस प्रकार मनुष्य को अपनी बस्ती मे निर्भय रहने का अधिकार है उसी प्रकार जगल मे बगैर रोक-टोक के रहने का जगली पशुओ को अधिकार है।

भेड, बकरी, मुर्गी आदि प्राणियो का एक दूसरा वर्ग है। इस वर्ग के प्राणियो का मनुष्य को भोजन देने के अलावा दूसरा कोई बडा उपयोग नही है। खूराक मिले, इसलिए मनुष्य ने उनको पाला। अपनी गरज के अनुसार वह उन्हे जीने देता है, उनकी वृद्धि होने देता है और आखिर मे उन्हे खा जाता है। मनुष्य जाति जबतक मासाहार का त्याग

नही करती तबतक यह चलता जायगा। हत्या के लिए ही जिन्हे पाला जाता है ऐसे प्राणियो का सवर्धन, अहिसक आदमी को नही करना चाहिए।

भेड, भैस, घोडा, हाथी, ऊट, कुत्ता, बिल्ली आदि पशुओ का तीसरा वर्ग है। आदमी ने उनसे सेवा लेने की युक्ति निकाली है। ये सब पालतू जानवर कहलाते है। कितनी मेहनत से ये प्राणी आदमी का जीवन चलाते है। एक दृष्टि से वे मानव-जाति के सरक्षक बन गये है। वे मानव के सहकारी मित्र भी है। दोनो दृष्टियो से इनका पालना इष्ट है। हृदय-धर्म बताता है कि जिनकी सेवा हम लेते है, जो हमारे अन्न-दाता हैं, जिनका पालन करने से हम आनन्द लेते आये है, उनपर छुरी नही चलाई जाय। बीमारी के समय उनकी सेवा-चाकरी हो, बुढापे के उनके दिन स्वाभाविक तरीके से पूरे हो, यह भी देखना चाहिए। इसीमे हमारा मनुष्यत्व है। और यही हमारी बुद्धि और शक्ति की शोभा है। इसीमे हमारे हृदय का विकास और परमात्मा का सतोप है।

किसी प्राणी को पालने और उससे सेवा लेने से पहले विचार कर लेना चाहिए कि उसकी पूरी जिम्मेदारी उठाने की ताकत हममे है या नही। पाले हुए पशुओ की अच्छी तरह देखभाल की व्यवस्था होने के बाद ही नये पशु बढाने का विचार करना चाहिए। इस दृष्टि से विचार करने से दूध के लिए भैस और बकरी मनुष्य को नही रखनी चाहिए थी। हाथी, घोडे और ऊट आखिर तक सेवा करते है, इसलिए सुरक्षित हो गये है। सेवा इन पशुओ की वृत्ति हो गई है। जबतक इस वृत्ति का नाश नही होता, तबतक वे निर्भय है। राजस्थान जैसे इलाके मे जबतक ऊट के बिना खेती का काम नही चल सकता तबतक वह सुरक्षित है। वहा मोटरे बढ जाने पर इसका लोप हो जायगा और कुबेर और दिलीप उनको बचा नही सकेगे। मोटरो ने घोडो को तो घटा ही दिया है।

प्रकृति की दृष्टि से ज्यादा-से-ज्यादा जीने की अनुकूलता गाय-बैल मे है। दूध के लिए गाय और खेती के लिए बैल अत्यत आवश्यक है।

उनके लोप से हिन्दुस्तान की समाज-रचना टूट जायगी और नई व्यव-स्था खड़ी होने तक असंख्य मनुष्य तथा पशु दोनों का ह्रास हो जायगा। इसीलिए हृदय-धर्म और जीवन-धर्म कहता है कि गाय की रक्षा करो।

गाय और बैल दोनों की उपयोगिता एक-सी और अखण्ड होती तो सवाल नहीं उठता। बैल, हल का काम न हो तो, गाड़ी में जोता जाता है और इस प्रकार उसकी उपयोगिता बनी रहती है। जबतक वर्ष के हरेक दिन सेवा करने का उसे मौका मिलता है तबतक वह निर्भय है। जबतक वृत्तिच्छेद न हो तबतक उसकी निर्भयता कायम रहेगी।

गाय में यह नहीं है। वह उम्र-भर दूध नहीं दे सकती। दूध से उड़ जाती है और एक उम्र के बाद बेकार भी हो जाती है। फिर न तो बछड़ा दे सकती है, न दूध। इस स्थिति में गाय का रक्षण करना आदमी का कर्त्तव्य हो जाता है। यह रक्षण कम-से-कम खर्च में और स्वाभा-विक ढंग से किस तरह हो, यह मनुष्य की बुद्धि का प्रश्न है। मनुष्य को अपनी पूरी योजना-शक्ति इस काम के लिए खर्च करनी होगी। इस प्रकार प्रयत्न किये जायं कि गाय का वंश पुष्ट हो, उसका दूध बढ़े, दूध कसदार हो, दूध न देती हो तब, कम-से-कम खर्च में उसका गुजारा करे, उस समय में उसके लायक काम ढूंढ लिया जाय, जबतक वह जिंदा है तबतक उसके मलमूत्र का पूरा उपयोग किया जाय, स्वाभाविक मृत्यु होने के बाद उसके चमड़े, हड्डी आदि का ज्यादा-से-ज्यादा उपयोग किया जाय। उसका बोझ दूध के व्यवसाय पर न पड़े, ऐसी व्यवस्था की जाय, तभी गाय की रक्षा होगी। जो गाय दूध देकर मनुष्य को

चराई। भैंस के दूध मे ज्यादा चर्बी होती है, इसलिए उसका उपयोग बढा और गाय की आजीविका ज्यादा कठिन हुई। यदि हमे गाय को बचाना है तो उसे आश्रय देकर भैंस का मोह छोडना चाहिए।

भैंस को पाला ही न होता तो अच्छा होता। उसके लिए दुनिया मे स्थान नही, यह बात नही है। कितने ही प्रदेश ऐसे है, जहा बैल काम नही कर सकते, वहा भैंसे काम करते है। ऐसी जगह भैंस तथा भैंसे को भेज देना चाहिए। इससे किसानो को लाभ होगा।

बकरी का सवाल जरा अलग है। मनुष्य ने बकरा-बकरी के साथ भक्ष्य-भक्षक की दृष्टि रखी है, सेव्य-सेवक की नही। इन दोनो भावनाओ का मिश्रण करना मनुष्य के लिए असभव होगा। बकरी गरीब आदमी की गाय है। बकरे को कुछ काम दे सके, तो ही दूध के लिए बकरी रखी जा सकेगी। मृत्यु के बाद उसके मृतावशेष से कुछ आय हो जाती है, इसीलिए उसे आजन्म नही पाला जा सकता। पेशाब और मिगनी से कुछ खाद मिल जाती है, इसीलिए उसका पालन नही हो सकता। दूध से कोई खास आमदनी नही होती। इस परिस्थिति मे उसका पालन-करना गाय के प्रति द्रोह करने के बराबर है।

बकरी से दूध लेना और उसके बच्चे को मार देना यह प्रचलित रिवाज भले ही हो, किन्तु मनुष्य-हृदय को वह अच्छा नही लगना चाहिए। मासाहारी लोग बकरे को खा जाय और अन्नाहारी लोग बकरी का दूध पिये, यह श्रम-विभाजन हो सकता है। इस परिस्थिति मे जानवरो का पोषण मासाहारी ही करे, यह स्वाभाविक है। अन्नाहारी बकरी को पालकर उसके नर बच्चे को खुराक के लिए मासाहारी को बेच नही सकता। इसी प्रकार अपने लिए निरुपयोगी प्राणियो को वह पाल नही सकता। बकरियो का वश इतनी जल्दी से बढता है कि उसे मुफ्त मे पालना अन्नाहारियो के लिए कठिन हो जाता है। इसलिए भैंस और बकरी का दूध उपयोग मे नही लाना चाहिए। पालतू पशुओ का वृत्ति-च्छेद न होने दे, उनका उपयोग जितना बढ सके और आखिर तक हो

सके उसके प्रयास करने चाहिए। आज तो इतनी ही रक्षा सभव है। इसीपर जोर दिया जाय।

गाय को मै मनुष्य के नीचे की सारी मूक दुनिया का प्रतीक मानता हू। गाय के बहाने मनुष्य को सारी चेतन सृष्टि के साथ आत्मीयता अनुभव करने का मौका मिलता है। इस प्रकार का पूज्य भाव गाय को ही क्यो दिया गया, यह स्पष्ट है। गाय ही मनुष्य का सच्चा साथी है, सबसे बड़ा आधार है। यही एक कामधेनु है। वह केवल दूध देनेवाली ही नही, खेती का आधार-स्तभ भी है। गोरक्षा हिन्दू-धर्म की दुनिया को दी हुई एक देन है, और हिन्दू धर्म भी, जबतक गाय की रक्षा करनेवाले हिन्दू है, तभीतक टिकनेवाला है। इस गाय की रक्षा किस प्रकार की जाय? रास्ता यही है कि गाय को बचाने के लिए लोग मरे। गाय को बचाने के लिए आदमी को मारना हिन्दू-धर्म और अहिंसा-धर्म दोनो के खिलाफ है। यह प्रश्न हमेशा उठाया जाता है कि गाय को पवित्र न माननेवालो की देन मे काफी तरया है। वे गोमास खाने से परहेज नही

यह समझ उनमे जबतक नही आती तबतक मैं धीरज रखूगा। मेरे निजी कार्य से, मेरी गोरक्षा और गोभक्ति से, मै उनका हृदय-परिवर्तन कर सकूगा। यही बात भारतीय ईसाइयो के लिए भी लागू होती है।"

आगे चलकर उन्होने कहा है—"आज अग्रेजो के लिए जितनी गाये कटती है उतनी मुसलमानो के लिए नही। मै तो अग्रेजो का भी हृदय बदलना चाहता हू, उन्हे समझाकर कि पश्चिमी सभ्यता जहातक हमारे लिए विरोधी है, वे उसे भूल जाय और जबतक वे भारत मे रहे, भारत की सभ्यता सीख ले। हम जितनी भी अहिसा सीखेगे और अहिसा का पालन करेगे तो गोरक्षा हो सकेगी और अग्रेज हमारे मित्र बनेगे। अग्रेज और मुसलमान दोनो को, खुद मरकर या कुर्बानी देकर, मैं अपने अनुकूल बनाना चाहता हू। अग्रेज अफसरो मे आज भारी घमड है, इसलिए जिस प्रकार से मुसलमानो के आगे दीन बनता हू उतना उनके साथ नही बनता। मुसलमान तो हिन्दुओ जैसे गुलाम ही है, उनके साथ एकरूपता से बात करता हू। अग्रेज यह बात नही समझ सकेगे और मुझे लाचार समझकर मेरा तिरस्कार करेगे। वे मेरी मदद नही चाहते। न मुरव्वती होना चाहते है, इसलिए मै उनके प्रति शात रहना चाहता हू। अग्रेज अधिकारियो को इतना ही कहता हू कि आपका बडप्पन मुझे नही चाहिए। इस बारे मे आपके साथ प्रेममय असहकार करता हू। अग्रेज तथा मुसलमानो को मार भगाकर गाय को बचाने से मुझे क्या सतोष हो सकता है, मुझे तो सतोष उसी समय होगा जब समस्त दुनिया की गायो का बचाव हो और वह शुद्ध अहिंसा के द्वारा हो सकता हो।"

गाधीजी ने १९०९ मे अपनी 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तक लिखी। उसमे गोरक्षा-सबधी अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये है

"मै खुद गाय की पूजा करता हू, यानी उसे मान देता हू। गाय हिन्दुस्तान की रक्षा करनेवाली है, कारण खेती हिन्दुस्तान का आधार है। सैकडो प्रकार से गाय उपयोगी प्राणी है, और वह उपयोगी प्राणी है, यह तो मुसलमान भाई भी कबूल करते है।

"किन्तु जिस प्रकार मैं गाय की पूजा करता हू उसी प्रकार आदमी की भी पूजा करता हू। जिस प्रकार गाय उपयोगी है, आदमी भी है। चाहे वह मुसलमान हो या हिन्दू। तो फिर गाय को बचाने के लिए मैं मुसलमानो के साथ झगडा कैसे करूगा ? क्या मै उन्हे मारूगा ? इस प्रकार करने मे मे मुसलमान तथा गाय का दुश्मन बनूगा। इसलिए मैं अपने विचार से कहता हू कि गाय की रक्षा करने का एक ही उपाय है और वह यह है कि मुसलमान भाई को हाथ जोडकर कहना और उसे देश की खातिर गाय को बचाने के लिए समझाना। और यदि वह न समझे तो मुझे गाय को छोड देना होगा, क्योकि वह मेरे हाथ की बात नही है। मुझे यदि गाय पर अत्यत दया आती हो तो अपने प्राण देने की तैयारी रखनी होगी, न कि मुसलमानो के प्राण लेने की। मैं यह मानता हू कि यह धार्मिक कायदा हे।

" 'हा' और 'ना' के बीच हमेशा बैर होता हे। जो काम मै करूगा मुसलमान भी वैसा करेंगे। जो मैं टेढा बनूगा तो मुसलमान भी टेढे बनेंगे। जो मै एक बालिश्त नमू तो वे एक हाथ नमेंगे और कदाचित न भी नमे। यह बुरा किया, ऐसा नही कहा जायगा। जब हमने हठ करना शुरू किया तो गाय का वध भी बढा।

"गाय को दु ख देकर हिन्दू गाय का वध करते है। उनसे उसको कौन छुडाता हे ? गाय के वश को आरी से जो हिन्दू काटते हैं, उन्हे कौन समझाता है ? इसी कारण एक प्रजा होते हुए भी हम रुके हुए नही है। आखिर हिन्दू अहिंसक और मुसलमान हिंसक हे, यह सच हो तो अहिंसक का क्या धर्म होना चाहिए ? अहिंसक को कभी मनुष्य की हिंसा करनी चाहिए, ऐसा कही लिखा नही है। अहिंसक का तो रास्ता सीधा है। दूसरो की हिंसा करना ही नही, उसे तो उनका नमन करना चाहिए। और उसीमे उसका पुरुषार्थ हे।"

इस प्रकार के विचार गाधीजी ने करीब साठ वर्ष पहले व्यक्त किये थे। उसके बाद देश मे स्वराज्य आया। अग्रेजी राज्य चला गया।

उनकी जगह नये पाश्चात्य आये। कई भारतीय भी उन्हीके विचारो की तरफ झुकते जा रहे हैं। पाकिस्तान मुसलमानो का अपना देश बना। फिर भी उनकी सख्या भारत मे कम नही है। हा, गैर-हिन्दुओ की झगडालू वृत्ति बहुत कम हो गई है। वे हिन्दुओ का दृष्टिकोण समझने लायक हो गये है, किन्तु गोरक्षा का प्रश्न उतना ही जटिल हे और उसका हल ऊपर दिये हुए गाधीजी के विचार मे है।

मुसलमानो की श्रेणी मे भारतीय ईसाई भी आते हे। अग्रेजो की जगह दूसरे पश्चिमात्यो ने तथा उन्ही जैसे विचार रखनेवाले भारतीयो ने ले ली है। स्वराज्य के बाद राज्य की बागडोर बहुसख्यक हिन्दुओ के हाथ मे आई है। वे अपने विचार अल्पसख्यको पर लादना चाहते है। यदि हिन्दू नम्र न बने, असहिष्णु बने रहे, तो देश मे स्थायी शाति स्थापित करने मे काफी कठिनाई होगी। असतुष्टि की चिनगारी बनी ही रहेगी। उससे उबरने का एक ही प्रभावशाली मार्ग है और वह हमे गाधीजी ने बता रखा है।

हिन्दू भी गोरक्षा की बात कहातक समझे है? गाय का पालन कहातक करते हे? गाय तथा उसके बछडो पर कितनी निर्दयता बरतते हैं, उससे आखिरी दम तक दूध निकालने मे क्या-क्या नही करते, होनहार बछडो को बे-मौत मार देते हे, बैल से ज्यादा काम मिल सके, इसलिए उसे किस प्रकार मारते हे, बछडो की खस्सी कितनी निर्दयता से करते है। जैसे ही गाय दूध देना बद कर देती है, उसे बेच दिया जाता है। यदि हिन्दू गाय नही बेचेगे, तो उन्हे कत्ल कौन करेगा।

इसके कुछ उपाय हो सकते हे। उसमे से एक यह है कि गाय को बैल की ही तरह उपयोगी बनाया जाय। हमारे धर्म मे यह कही नही है कि गाय से काम न लिया जाय। यदि गाय काम करने लगो तो उसकी देखभाल होगी। बेकार बोझ नही बढेगा। दूसरे अनेक उपाय किये जा सकते हे। यदि गाय का सम्पूर्ण उपयोग किया जाय, अयोग्य प्रजनन पर अकुश रखा जाय और उसे धार्मिक भावना से पाला-पोसा

जाय तो इस अटपटे प्रश्न का हल निकलेगा। जब हिन्दू रास्ता निकालेंगे तो अहिन्दू भी उसका अनुकरण करेंगे। वे भी राष्ट्र के एक महत्वपूर्ण अंग हैं। देश की समृद्धि में वे भी हिस्सा लेना चाहते हैं, यह हमें नहीं भूलना चाहिए।

गोरक्षा-सम्बन्धी विचार करते समय एक तथ्य ध्यान में रखना होगा कि भारत में एक बड़ी संख्या में मांसाहार करनेवाले बसते हैं। समूचा समाज शाकाहारी हो तो भी गाय को बचाने की खातिर निरामिष भोजन की व्यवस्था करनी होगी। कुछ प्राणी ऐसे भी हैं, जिनको केवल मांस के लिए ही पाला जाता है। उनसे ऊंची जाति का मांस मिल सके, ऐसा प्रबंध भी आवश्यक है। वध करते समय पशु को कम-से-कम पीड़ा हो, स्वच्छता तथा रोग-नियंत्रण की ओर पूरा ध्यान रहे, यह भी आवश्यक है। जिस प्रकार दूध के व्यवसाय को सरकार ने महत्वपूर्ण माना और उसपर नियंत्रण करना शुरू किया उसी प्रकार मांसोत्पादन भी सरकार को अपने हाथ में ले लेना चाहिए। यदि सस्ते दर से लोगों को उच्च कोटि का मांस मिलता रहेगा, तो गोमांस की ओर से उन्हें प्रेमपूर्वक हटाया जा सकेगा। गाय सुरक्षित हो सकेगी। साथ-साथ यह भी प्रयत्न करते रहना होगा कि मनुष्य-समाज मांसाहार से हटकर शाकाहार की तरफ झुके। इन कारणों से हमारी बढ़ती हुई लोक-संख्या और सीमित जमीन पर ज्यादा समय तक मांसाहार पनप नहीं सकता।।

मांसाहार करनेवाले सब क्रूर होते हैं, यह नहीं कहा जा सकता। वे भी प्राणियों के प्रति दया-भाव रखते हैं। उनके भले के लिए प्रयत्नशील होते हैं। उन्हें पीड़ा न हो, इस हेतु उनकी सेवा करते हैं, किन्तु जब उन्हें शांति से जिन्दा नहीं रख सकते तब उनका कष्टमय जीवन शेष कर देते हैं। इस प्रकार के कार्य के लिए विदेशों में कई संस्थाएं हैं और उनका अनुकरण कर हमारे देश में भी एक व्यापक संस्था की स्थापना की गई थी—'पशु कल्याण समिति'। धनी-मानी लोग, जात-

पात से ऊपर उठकर इन संस्थाओं का संचालन करते हैं, धन एकत्र करते हैं। हमारी गोशालाएं तथा पिंजरापोल आदि संस्थाओं की स्थापना इसी बुनियाद पर की गई है। इसकी ओर हमारी राष्ट्रीय सरकार का कुछ समय से ध्यान गया है। उसने 'एनीमल वेलफेयर बोर्ड' नामक एक आयोग की स्थापना की है। आशा की जाती है कि यह आयोग गो-कष्ट-निवारण को प्राथमिकता देगा।

# पशु का अर्थशास्त्र

दुनिया की कोई भी शक्ति केवल भावनाओ के वल पर पशुओ को नही वचा सकती। पशु-रक्षा के लिए अर्थशास्त्र का सहारा लेना ही होगा। भावनाहीन अर्थशास्त्र भी उनकी रक्षा नही कर सकता, यह वात भी उतनी ही सत्य है। भावना और अर्थशास्त्र के उपयुक्त मेल से सवका कल्याण होता हे। भारतीय सस्कृति मे गाय को इतना वडा तथा महत्वपूर्ण स्थान मिला, इसका कारण ही यह है कि गाय की समृद्धि पर ही देश का कल्याण अवलवित हे और जवतक गाय हमारे अर्थतत्र मे मदद देती रहेगी तवतक ही उसका कल्याण होता रहेगा। गाय यदि उस जगह से हटी तो उसका विनाश होगा और हमारी सस्कृति भी खत्म हो जायगी।

आज देश मे कई प्रकार के अर्थशास्त्र प्रचलित हैं और उनमे से हर-एक की अपनी-अपनी कुछ विशेषताए है। गाधीजी के अर्थशास्त्र मे दो तत्त्व प्रमुख दिखाई देते है—१ पूरे समुदाय का भला हो। कोई किसी का शोषण न करे, और २ सुधार-कार्य सवसे निचले स्तर से शुरू हो। गाधीजी की अभिलाषा सेवामय अर्थशास्त्र की ओर वढने की थी।

कोई भी कारीगर जिस औजार से अपना कारोवार चलाता है उसके प्रति आगे चलकर, उसमे पूज्य भाव जाग्रत हो जाता है। किसान भी एक कारीगर हे और उसके उत्पादन का सवसे महत्त्वपूर्ण साधन हे उसकी गाय। वह उसे खेती के काम के लिए वैल देती है, जमीन की उपजाऊ शक्ति कायम रखने के लिए खाद देती है। भारत-जैसे खेती-प्रधान देश मे यह वहुत महत्वपूर्ण वस्तु माननी होगी। गाय, वैल

की माता, हमारे कृपि अर्थशास्त्र का केन्द्र-विन्दु है। बैल से हमे अन्न-उत्पादन, वाहन आदि के लिए शक्ति मिलती है और इसी कारण हम इस अर्थशास्त्र को गोकेन्द्रित अर्थशास्त्र कहते है। गाय हमारे अर्थशास्त्र के हरएक पहलू को छूती है। यह वात पुराने जमाने मे भी मानी गई थी और इसी कारण उसके पीछे हमारी इतनी भावनाए जुड गई है। गाधीजी ने गाय को अपनाया, इसके कारण इससे भी ज्यादा गहरे थे। उनके लिए गाय पशुजगत का प्रतीक थी। गोसेवा के रास्ते से वह सत्य और अहिसा के करीव जाना चाहते थे। उनके सव कार्यक्रमो की इसीसे शुरूआत होती है। जीवनोपयोगी वस्तु वनाने मे मानव ने स्वकष्ट के अतिरिक्त शक्ति देनेवाले दूसरे साधनो का उपयोग किया है। खनिज कोयले के अविष्कार के पूर्व, पाश्चात्य देशो मे शक्ति के लिए घोडो का उपयोग होता था। हमारे पौर्वात्य देशो मे गाय-वैल का उपयोग हुआ। औद्योगिक युग शुरू होने के वाद पश्चिम का अर्थ-शास्त्र घोडे के केन्द्र से उठकर खनिज कोयले की तरफ वढा और उसके वाद पैट्रोलियम की तरफ। इस कारण पशु-हिसा वढती गई। उत्पादन कार्य मे जवतक हम गाय तथा पशु-धन का उपयोग करते है, तवतक उत्पादन की मात्रा पर नैसर्गिक अकुश रहता है और जव हम खनिज कोयला अथवा शक्ति देनेवाले दूसरे साधनो का उपयोग करते है तव उनके खर्च पर कोई नैसर्गिक अकुश नही रहता। इस कारण स्वावलवन अथवा गोकेन्द्रित अर्थशास्त्र के लाभ से हम वचित होते है और समाज मे गडवडी पैदा होती है। जव उत्पादन वढता है तव उसके लिए वाजार ढूढना पडता है। पिछली दो सदियो मे इसी अर्थशास्त्र के कारण यूरोप ने वाजार ढूढने का प्रयत्न किया और ज्योही पशु-वल की जगह दूसरी शक्ति ने ली, तो हिसा आवश्यक हो गई। वाजार-हाट के लिए साम्राज्य फैले और झगडे शुरू हुए। इसका नतीजा निकला पहला महायुद्ध। यह झगडा वही समाप्त नही हुआ। आगे वढता

प्रकृति मे मिली हुई शक्ति के स्रोत दो प्रकार के होते है १ हमेशा रहनेवाले, जोकि वनस्पति तथा पशु-पक्षियो से मिलते है। शास्त्रीय भाषा मे ये प्रचलित स्रोत कहलाते है। २ कोयला, लोहा, पैट्रोल आदि खनिज वस्तु देनेवाले स्रोत। पृथ्वी के अन्दर इनका उत्पादन नही होता। हम तो जो भडार मे पडा है उसका ही उपयोग करते है और इस प्रकार उसकी मात्रा प्रतिदिन कम होती जाती है। ये स्रोत, भडारी स्रोत—रिजर्व कहलाते है। इनपर आदमी जैसे-जैसे ज्यादा अवलबित होता जायगा, वैसे-वैसे इनपर अधिकार करने के लिए उसे ज्यादा हिंसा करनी पडेगी। गाय से हटकर कोयले की तरफ जाने मे हम अहिंसा की दृष्टि से अधेरे मे कूद रहे है। इस प्रकार स्रोतो को हथियाना और उनके द्वारा बढे हुए उत्पादन के लिए बाजार-हाट ढूढना, यही पिछले दो महायुद्धो का सबसे महत्वपूर्ण कारण था। पेट्रोल के कुए दुनिया के कुछ देशो मे बटे थे, और इन देशो पर कब्जा करने के लिए ही लडाई छिडी। साम्राज्यवाद मे भी यही मुख्य तत्व रहा है। यदि हमे चिर-शांति की स्थापना करनी है, तो शक्ति के स्रोतो के लिए बैल पैदा करनेवाली गाय का ही सहारा लेना होगा। गाय को हम

के लिए लाभदायी सिद्ध होगा। गाधीजी के अर्थशास्त्र की कुजी यही है। इन्ही विचारो से उन्होने गोसेवा को, खादी-ग्रामोद्योग को अपनाया और समाज के आगे सेवा तथा त्याग का ध्येय रखा। किन्तु अब यह लगता है कि शासको और गोपालको को इस शास्त्र मे विश्वास नही है और न इस दृष्टि मे स्वतत्र विचार करनेवाली कोई सस्था दिखाई देती है।

देश मे कल-कारखाने जोरो से बढ रहे हैं। दूध का व्यवसाय ग्रामोद्योग के क्षेत्र से हटकर बडे कारखानो की ओर बढता जा रहा है। बैल आज औद्योगिक समाज मे टिक नही सकेगा, वह पिछडेपन का एक लक्षण माना जाता है, इसलिए ट्रैक्टर आदि के उत्पादन तथा आयात की ओर जोरो से प्रयत्न हो रहे हैं। यत्रो की मदद से खेती करनेवालो को प्रगतिशील माना जाता है और 'प्रगति' जल्दी से हो, इस कारण उन्हे अनेक प्रकार की सुविधाए दी जाती है। देश मे करोडो टन गोबर तथा मूत्र बर्बाद हो रहा है। उसे बचाने के बजाय रासायनिक खाद अधिक निर्यात किये जाते हैं और उनका वितरण करने के लिए योजनाए बनाई जाती हैं। देश मे भी रासायनिक खाद उत्पन्न करने के लिए कारखाने खुल रहे हैं। मृत पशुओ का व्यवसाय अभीतक देहातो मे बसनेवाले हरिजनो के हाथ मे था। मृत पशुओ के चमडे का अच्छा उपयोग नही हो सकता, यह मानकर पशुवध को बढावा देने की बात चलती है। स्वच्छता, सम्पूर्ण उपयोग आदि के नाम पर बडे कत्लखानो की स्थापना हो रही है। मृतावशेषो की तरफ पूरा ध्यान नही दिया जाता और हरिजनो के हाथ से एक व्यवसाय जा रहा है।

पशुपालक जागृत है, यह भी नही कहा जा सकता। पशुपालन कितने ही हिस्सो मे बटा हुआ है। शहर के पास रहनेवाला केवल दूध के व्यवसाय की ही बात सोचता है। दूध-उत्पादन के लिए वह देहातो से विकसित जाति के पशु खरीदता है और उत्पादन कम होने पर उन्हे अपने जूथ मे से निकाल देता है और उनकी जगह दूसरा पशु आ जाता है। इस प्रकार देश के पशुधन की अवनति होती जा रही है।

बैल तैयार करनेवाला पशुपालक अपनी रेवड को लेकर घूमता रहता है और बछडो की बिक्री से होनेवाली आमदनी पर सतोप मानता है। गाय की दूध देने की शक्ति का विकास नहीं हो रहा है। अस्थिर जीवन तथा निजी भूमि के अभाव मे खाद बर्बाद हो जाती है। मृत पशुओ का भी पूरा उपयोग नही हो पाता।

यही कहानी है मास के लिए पाली जानेवाली भेड-बकरियो की। अपने पशुओ का आसानी से पोषण करने के लिए पशुपालक फसल तथा जगलो को बर्बाद करने मे नही हिचकिचाते। कितने ही इलाको मे केवल खाद के लिए ही असख्य पशु पाले जाते है। न तो उनकी कोई देखभाल करता है, न उनके खान-पान की। मालिक को थोडा-सा गोबर ही मिल जाता है। कुछ खर्च नही करना पडता, इसलिए जो भी प्राप्त हो जाता है उसे वह मुनाफा मानता है। भूसे आदि का उपयोग हो जाय, घर के बैल तैयार हो जाय, कुछ खाद मिलती रहे, कुटुम्ब के दूध की व्यवस्था हो जाय, इसलिए किसान कुछ पशु पाल लेता है। खेती मे बैल का स्थान यत्र ले, इसका प्रचार हो रहा है। रासायनिक खाद आसानी से मिल जाती है। इस तरह के अनेक कारणो से किसान पशुपालन की ओर से हटता जा रहा है। इसका प्रभाव भारत के पशु-पालन पर अवश्य पडेगा। पशुपालक अगर अपना ही लाभ देखता रहेगा और राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की उपेक्षा करता रहेगा, तो गाय बच नही पायेगी।

दूसरी ओर गोवध-बदी का आदोलन सस्कृति के नाम पर होता ही रहता है। एक ओर गोवध-बदी हो और दूसरी ओर गाय के उपयोग मे कमी होती हो या उसकी अवहेलना होती हो, तो क्या परिणाम हो सकता

अर्थ-व्यवस्था स्थापित होगी और देश मे शाति रखने मे मदद मिलेगी।

शोपण-रहित समाज के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादन करने के लिए साधन मिले और वह अपना तथा अपने पर निर्भर लोगो का सम्मान के साथ भरण-पोपण कर सके। भारत की करीव ८० प्रतिशत जनसख्या अपने भरण-पोपण के लिए खेती पर निर्भर रहती है। उसकी समृद्धि पर ही देश का भविष्य आधारित है। छोटे पैमाने पर खेती करनेवाले ये सब किसान गो-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था पर ही चल सकते है। शास्त्रीय ढग से उत्पादन हो, इस हेतु बडे फार्मो की योजना वनाते समय, बडी खेती के कारण जो लोग वेकार होगे, उनका क्या होगा, यह भी राष्ट्र को सोचना चाहिए। आज इनमे से कितने ही लोग आत्मनिर्भर है। अपना जीवन-यापन करते है। क्या इन सब लोगो को कल-कारखानो मे काम मिल सकता है? या सरकारी नौकरी मिल सकती है? शहर का कृत्रिम जीवन विताने से समाज का नैतिक पतन होता है। देश मे एक भावना वढ रही है कि श्रम तो कम करना पडे और ज्यादा-से-ज्यादा लाभ मिले। इस भावना का असर उत्पादन पर पडता है। इतना ही नही, श्रम का मूल्य भी कम होता जाता है, मागे वढती जाती है। उनपर अकुश नही रहता। औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रमिक-कल्याण-कार्य से शाति नही रखी जा सकती। कृपको को जमीन से हटाने पर उनके खान-पान तथा दूसरी व्यवस्था का वोझ भी सरकार पर वढता जाता है। सरक्षण का भी सवाल खडा हो जाता है। आज शहर देहातो पर सत्ता चलाते है और उनका शोपण करते है। परिणामत देहात नष्ट होते जा रहे है। खादी-मानस यह सुझाता है कि विदेशी सत्ता के अस्त के साथ, शहरो को देहातो की सेवा का मार्ग अपनाना चाहिए। देहातो का शोपण, वडी सघटित हिंसा है। हमे अगर अहिंसक आधार पर स्वराज्य की स्थापना करनी है, तो देहातो को फिर से उसका योग्य स्थान देना पडेगा।

गाधीजी अपनेको ग्रामवासी कहते थे। लोग देहातो मे वसे, उनकी

जरूरते पूरी हो, इसलिए गाधीजी ने सस्थाए खोली और ग्रामवासियो की शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति सुधारने के लिए भरसक प्रयत्न किये। देहातो मे क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए, इसका स्पष्ट चित्र उनके सामने था। उन्होने पाश्चात्य शिक्षा ली थी, फिर भी हमारे देहाती लोगो तथा शहरी लोगो का अतर वह कम कर सके। उनमे देहातियो के साथ एकरूप होने की असीम शक्ति थी। अफ्रीका तथा हिन्दुस्तान मे आश्रमो की स्थापना करते समय उन्होने खेती तथा पशुपालन को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। वह गोकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था के हिमायती थे, क्योकि दूसरे प्रकार की अर्थ-व्यवस्था भारत के देहातो को उबार नही सकती। आश्रम के खेतो तथा पशुशाला मे नित-नये प्रयोग होते रहते थे और आग्रह रखा जाता था कि साधारण गोपालक उनको अपना सके और लाभ उठा सके। साबरमती तथा सेवाग्राम मे बडे-बडे मकान नही बने, आधुनिकतम साधन नही अपनाये गए, इसका यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है। उनका आग्रह रहा कि नीचे के स्तर के लोगो की भी उन्नति करते हुए आगे बढो।

एक बार साबरमती-आश्रम मे एक मित्र ने सुझाया कि मै जर्मनी जाऊ और वहा से कडेन्स्ड मिल्क के कारखाने का अनुभव लाऊ और भारत मे आने पर एक कारखाने का सचालन करू। सुझाव लुभावना था। बापू से चर्चा हुई। मित्र ने दलील पेश की कि इस प्रकार का कारखाना खोलने से कितने ही लोगो को काम मिलेगा। दूध को बाजार मिलने से गोपालको की आमदनी बढेगी। इसपर गाधीजी ने बडा मार्मिक उत्तर दिया

"इससे गरीब देहातो को क्या लाभ मिलेगा? उनका तथा गाय का तो शोषण ही होगा। इस प्रकार का साहस करना है, तो मेरे जैसे सेवक की क्या जरूरत है? पैसे कमानेवाला कोई भी यह कर सकता है।" मुझे कहने लगे—"ज्ञान कमाना तो अच्छा है ही, पर इसके लिए परदेश जाने की क्या जरूरत है? जो भी ज्ञान तुम्हारे पास है, उसका पूरा

उपयोग करो, लोगो से सीख लो। जब मुझे लगेगा कि तुम और गाव-वाले एक स्तर पर पहुच गये हैं, तो मैं ही तुम्हे ज्यादा ज्ञान-प्राप्ति के लिए परदेश जाने का आग्रह करूगा।" किन्तु आज तो ऐसा लगता है कि सब विचारधारा ही इसके विपरीत होती जा रही है। कितने ही नवयुवक, जिनको कि अपनी परिस्थिति का पूरा ज्ञान नही है, परदेश जाते हैं। समय तथा धन खर्च करते है। उसमे से कितने ही भारत लौटकर नही आते। भारत मे उन्हे अपना भविष्य नही दिखाई देता। जो लौटकर आते है उनके ज्ञान का देश मे कितना उपयोग होता है? इस सबका एक कारण है कि राज-काज मे विदेशी शिक्षण और डिग्री धारी 'विशेषज्ञो आदि का बोलबाला। जो विदेश हो आते है, उन्हे ही सम्मान से देखा जाता है। देश मे जो ज्ञान पडा है उसकी कदर नही हो पाती। परिणाम यही होता है कि देशी विद्वानो मे हीन भावना पैदा होती है। परदेश से ज्ञान प्राप्त करके आये हुए लोगो मे निराशा और परदेशी विशेषज्ञो मे अहभाव बढता है।

गोसेवा सघ की बैठक मे गोसेवा का कार्य व्यक्तिगत हो या सामुदायिक इस सबध मे काफी चर्चा हुई थी। गाधीजी का अभिप्राय इस प्रकार रहा

"सामुदायिक गोसेवा के बगैर गाय तथा भैस बच नही सकती। हरेक किसान अपने घर मे गाय-बैल रखकर उनका पालन अच्छी तरह से तथा शास्त्रीय पद्धति से कर नही सकेगा। गोवश की क्षति के अनेक कारणो मे से व्यक्तिगत पालन भी महत्व का है। यह बोझ किसान की व्यक्तिगत शक्ति के परे है।

प्रत्येक कार्य मे आज दुनिया सामुदायिक शक्ति-सगठन की ओर जा रही है। इस सगठन का नाम सहकार है। बहुत-सी चीजे सहकार से चलती हैं। हमारे देश मे सहकार आया तो है, किन्तु गलत रूप मे। उसका सच्चा लाभ हिन्दुस्तान के गरीबो को मिला ही नही।

बस्ती ज्यो-ज्यो बढती जा रही है त्यो-त्यो किसान की जमीन कम

से दोनो सुविधाए आसानी से मिल सकती है ।

६ किसानो को घास-चारे का खर्च ज्यादा करना पडता है । उसकी तुलना मे सहकारी ढग से खर्च कम होता है ।

७ व्यक्तिगत किसान अपना दूध आसानी से नही बेच सकता । सहकारी पद्धति से ज्यादा कीमत मिलती है । मिलावट करने के लालच से बचा जा सकता है ।

८ किसान के पशुओ की परीक्षा करना असभव है, किन्तु पूरे गाव के पशुओ की जाच करना सरल है और उनका वश सुधारने का काम भी सरल हो जाता है ।

सामुदायिक अथवा सहकारी पद्धति से कितनी ही मुश्किले हल हो जाती है । सबसे बडी और सचोट दलील तो यह दी जाती है कि व्यक्तिगत पद्धति के कारण अपने पशुओ की दशा दयाजनक हो गई है । उसमे परिवर्तन करे तो ही हम बच सकेंगे, पशुओ को बचा सकेंगे ।

यह तो सिद्ध है कि यदि हम जमीन सामुदायिक पद्धति से जोते तो उससे पूरा लाभ ले सकेंगे । एक गाव की जमीन सौ टुकडो मे बट जाय उसकी बजाय क्या यह लाभदायी नही होगा कि सौ किसान पूरे गाव की जमीन पर सहकारिता से खेती करे । जो खेती के लिए लागू होता है वही पशु-पालन के लिए भी ।

यह बात दूसरी है कि लोगो को एक सहकारी पद्धति पर लाना कठिन है । सब चीजो मे कठिनाइया तो होती ही हे । गोसेवा का कान भी सब कामो से ज्यादा मुश्किल है । मुश्किल दूर करने मे ही सेवा का मार्ग साफ होता है । यहा तो इतना ही बताना है कि सामुदायिक पद्धति क्या चीज होती है और व्यक्तिगत पद्धति कैसी भूलो से भरी हुई है । व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा भी सहकारिता को स्वीकार करके ही कर सकता है । जहा सामुदायिक पद्धति अहिसा है, वैयक्तिक हिसा । ”
(हरिजन बधु १५-२-१९४२)

आज की परिस्थिति मे सामुदायिक पद्धति का अनुकरण करते समय

चार

# मानव-भोजन : दूध

नानवीय जीवन के लिए कुछ निश्चित प्रमाण मे प्राणीजन्य अन्न की आवश्यकता होती है। उसकी पूर्ति के लिए मासाहार को स्थान मिला। किन्तु अहिसक समाज मे मासाहार को स्थान नही हो सकता। अनुभवो से पता चला है कि उचित मात्रा मे दूध का सेवन करने से शरीर की सब मागे पूरी की जा सकती है। यह देखा गया है कि जमीन के वढते भार के कारण केवल अन्न के लिए ही पलनेवाले प्राणियो की सख्या पर अकुश रखना होगा। मासोत्पादन से दूध-उत्पादन ज्यादा फायदेमद है।

जिस देश ने हिंसा के कारण मासाहार को छोडकर दूध को अन्न मे प्राधान्य देने की वात कही, दूध देनेवाली गाय को ऋद्धि-सिद्धि की जननी माना, वैल को अर्थशास्त्र की रीढ की सज्ञा दी, गोवर-मूत्र मे श्री का वास है, ऐसा प्रतिपादित किया, उस भारत मे घी-दूध की नदिया वहती रहनी चाहिए थी, किन्तु आज स्थिति विलकुल अलग ही है। दुनिया मे गाय-भैंस की आवादी १९५९-६० की गणनानुसार ८९ करोड गाय और ९ करोड भैंस हैं। उसमे से केवल भारत मे १७ करोड गाये और ५ करोड भेंस है, यानी १।५ से थोडा अधिक। किन्तु भारत मे दूध का सालाना उत्पादन कुल ७ प्रतिशत से भी कम होता है। भारत की गाय के दूध का औसत २२० कि० और भैंस का दूध ५३० कि० है, जवकि दूसरे प्रगतिशील देशो मे ४००० कि० तक यह औसत जाता है। सन् १९५४ मे किये गए परीक्षणो के अनुसार २८ ६ प्रतिशत गाय १।४ कि० से कम दूध

देती है और ६४ ८ प्रतिशत १ कि० से कम और केवल ० ३ प्रतिशत गाय २ कि० से ज्यादा दूध देती है। भैस के दूध का अनुपात इस प्रकार है ० १ प्रतिशत, १६ २ प्रतिशत और १८ ८ प्रतिशत। गत वर्षों मे इसमे थोडा फर्क पडा होगा।

दुधारू पशुओ का अनुपात ३० प्रतिशत होते हुए भी वे करीब ५४ प्रतिशत दूध देती है। इसके अलावा भैस के दूध मे ६ से ८ प्रतिशत स्नेहाश होता है जबकि गाय के दूध मे ३ ५ से ५ प्रतिशत। किन्तु गाय बछडा भी देती है और खेतो मे बैल की कीमत तो रहेगी ही। सन् १९६१ की गणनानुसार भारत मे दूध की औसत खपत ४ ६२ औंस प्रतिदिन प्रति व्यक्ति होती है, जबकि उसे कम-से-कम १० औंस तो मिलना ही चाहिए। अलग-अलग राज्यो मे यह औसत अलग-अलग है। पजाब मे १३ ७ औंस, राजस्थान मे ६ ५२ औंस, उडीसा मे २ ३५ औंस, प० बगाल मे ३ १ और मध्य प्रदेश मे ३ ७५ औंस। सन् १९६१ मे भारत मे कुल दूध करीब २ करोड मेट्रिक टन हुआ। अनुमान है कि इसमे से करीब दो-तिहाई दूध बाजार मे आया और बाकी एक-तिहाई घरखर्च और बछडो आदि के उपयोग मे आया। इस परिस्थिति के अनेक कारण है। पशुओ की दूध देने की शक्ति मे कमी, योग्य प्रकार के अन्न का अभाव, दूध के उत्पादन मे व्यवस्थित सचालन की त्रुटि, रोगो का प्रादुर्भाव, दूध की आयु बढाने के साधनो की जानकारी न होना, आदि। किन्तु सबसे मुख्य और महत्व की बात है किसी प्रकार की निश्चित योजना या नीति का अभाव।

भारत मे शहरीकरण शुरू होने के पूर्व साधारण तौर से कुटुम्ब मे गाय-भैस पालने की प्रथा थी। अधिकतर लोगो का जमीन के साथ सबध होने के कारण पशुपालन खास समस्या नही बनी थी। कुटुम्ब मे गाय पलती थी, देहाती चरागाहो मे चरती थी और कमी के समय मे खेती से उत्पन्न होनेवाले घास-चारे की व्यवस्था की जाती थी। दूध का उपयोग मुख्यत कुटुम्ब मे होता था। जब कभी जरूरत से ज्यादा होता था तब घी बनाया जाता था या आपस मे बाट लिया जाता था।

किन्तु उद्योग तथा दूसरे कारणो से शहरो मे आबादी घनी होने लगी। सबके लिए गाय पालना कठिन होने लगा। इसलिए दूध का उत्पादन करनेवाले ग्वालो का वर्ग बना। ये लोग दूध-उत्पादन के लिए पशुओ का पालन करते है और जनता की दूध-घी की माग पूरी करते है। पशुओ के खानपान की वस्तुए देहातो मे मिल जाती थी, उनका सग्रह हो जाता था। आगे चलकर घनी बस्तीवाली जगहो मे वत्स-पालन का कार्य महगा होने लगा, इसलिए ग्वाला अपने छोटे पशु किसानो को पालने के लिए दे देता था। उसका भार कम हो जाता था। देहातियो का जीवन-स्तर बढने से वे भी दूध-घी की माग करेगे। उसकी पूर्ति करने का एक ही मार्ग है कि उनके उत्पादन का एक हिस्सा उनके लिए सुरक्षित कर दिया जाय। अभीतक तो छोटे देहातो मे दूध का अभाव है। जो कुछ पैदा होता है और जहातक सभव होता है वह खिचकर शहरो मे आ जाता है। अच्छा तो यह हो कि इसी व्यवसाय को सह-कारी रूप मे पनपने दे और छोटे उत्पादन गोशाला-जैसी धार्मिक सस्थाए अपने हाथ मे ले। सरकार दोनो का समन्वय करे। यह हिसाब लगाया गया है कि देश मे दो करोड टन दूध पैदा होता है। इसमे से करीब ४० प्रतिशत दूध तरल स्थिति मे आता है और बाकी के दूध से अनेक वस्तुए बनती है। चूकि दूध का उत्पादन बारह मास एक-सा नही होता, इसलिए जितना दूध तरल स्थिति मे काम मे आ सके उतने की ही व्यवस्था की जाय और बाकी के दूध को, जबकि वह अधिक मात्रा मे हो, अनेक पदार्थ बनाने के काम मे लाया जाय।

शहर मे मिलनेवाले दूध पर स्वास्थ्य, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि के साथ-साथ नैतिक दृष्टि से भी विचार करना होगा। दूध का व्यापार शहर मे रहनेवाले अज्ञानी तथा गरीब ग्वालो के हाथ मे होता है और पैसा कमाने के लिए वे कुछ भी करने से नही हिचकिचाते। कुदरत ने गाय के आचल मे उसके बच्चे के लिए ही दूध पैदा किया है, पर मनुष्य ने अपनी जरूरत के लिए उस दूध मे बढोतरी की। किन्तु हम क्या अनु-

भव करते है ? ऊची जाति के अच्छे बच्चे मार दिये जाते है, ताकि मनुष्य को ज्यादा-से-ज्यादा दूध मिले। दूध पैदा करने के लिए गाय मे शक्ति चाहिए और वह शक्ति उसे अच्छे पोपण से ही मिलती है। गाय की हम इतनी दुर्दशा करते है, ऐसी विचित्र स्थिति मे रखते है, उसे अपना जीवन चलाने के बराबर ही खाने को देते है, यह सब देखकर दूध का उपयोग करना पाप है, ऐसा लगता है। शहर मे रहनेवाले ग्वाले किसानो को तग करते है और कभी-कभी उनसे खेती छुडवाने का भी कारण बनते है। शहर मे घी-दूध का उपयोग करनेवाले लोग क्या यह सब जानते है ? एक और प्रथा चल पडी है। दूध का व्यवसाय करने के लिए ग्वाला देहातो मे से चुनकर अच्छी गाये शहर मे लाता है, उनका पूरा कस निकाल लेता है। अपना काम पूरा होने पर जब गाय दूध से उड जाती है तब उसे या तो छोड देता है या कसाई को बेच देता है और फिर नई गाय ले आता है। इस सबका असर पशु-कल्याण पर होता है और देश को भी उससे काफी नुकसान होता है। मगर यह सब दोप क्या ग्वाले के सिर पर ही लादा जा सकता है ? दूध के व्यापारी तथा दलाल ग्वालो को भी चूसते रहते है। इस प्रकार एक दुश्चक्र बन जाता है। एक दूसरे को दोप देते है, किन्तु अवनति का कारण सभी बनते है। इस विपम परिस्थिति मे से मार्ग निकालने का प्रयत्न हो रहा है। किन्तु लगता है कि बीमारी के मूल को छूने के बजाय लाक्षणिक चिकित्सा ही की जा रही है। कई शहरो मे ग्वाले घनी बस्ती मे बस गये है, उन्हे वहा से निकालकर दूसरी जगह बसाने के प्रयत्न होते है। दूध कालोनी निर्माण होती है। किन्तु समस्या तो वही रहती है। इतना ही होता है कि शहर से थोडी दूर पहुच जाते है। यदि शहर बढा तो फिर वही समस्या खडी हो जाती है। अनेक कारणो से ग्वाले इन बस्तियो मे जाना नही चाहते। क्यो नही जाते, उन्हे क्या अडचने है, इसका भी विचार करना होगा।

बछडे पालना, दूध से उडी हुई गाय को सूखे समय मे पालना, शहर

मे तथा इन कालोनियो मे महगा पडता है। देहातो के साथ सदैव टूट ही जाता है, इसलिए बछडे जन्मते ही मार दिये जाते है और दुधारू पशुओ को कसाइयो को बेच दिया जाता है। कत्ल करने के पहले कानून से बचने के लिए पशुओ को अनुपयोगी बना दिया जाता है। इसलिए ग्वालो के बछडे तथा दूध से उडे हुए पशु पल सके इस हेतु साल्वेज फार्म की योजना की जाती है, किन्तु अधिकतर ग्वालो को इसमे रुचि नही होती। वे इस प्रकार का खर्च तथा भार उठाना नही चाहते। चूकि बछडे बहुत कम उम्र मे ही मारे जाते है, इसलिए उनको बचाना कठिन हो जाता है। दूध से उडे हुए पशुओ को फिर से दूध मे लाने का खर्च उठाने को ग्वाला तैयार नही होता। वह तो छुटकारा पाना चाहता है। उसे आसानी से ताजी ब्याती हुई गाय मिल सकती है। सूखे पशुओ को खरीदकर उच्छेदन की योजना बनी है, किन्तु इसमे सफलता की आशा बहुत कम है। ग्वालो को इन पशुओ मे रुचि नहीं होती और ज्यादा-से-ज्यादा दूध मिले, इसलिए वह उनपर कितनी ही क्रियाए करता है और अधिकतर पशु फिर से ब्याने लायक नही रहते। योग्य तो यही होगा कि साल्वेज कैंप पशुपालक सहकारी पद्धति से चलाये, उन्हे स्वावलबी करने का प्रयत्न करे, आरम्भ मे सरकार की ओर से जमीन आदि साधन के लिए अनुदान मिले। जबतक ऐसे पशु पालने का महत्व गोपालक नही समझेगा तबतक यह योजना सफल नही होगी। सिर्फ सरकारी तन्त्र से यह काम नहीं होगा।

दूध-उत्पादन के लिए शहरो मे देहातो से, खासकर ऐसे देहातो से जहा पशुपालन की सुविधाए है, पशु बडी सख्या मे आते रहते है। दुर्भाग्य से उस विभाग के उच्चतम पशु छट जाते है और आगे सवर्धन के लिए दूसरी या तीसरी श्रेणी के पशु बच जाते है। पजाब-हरियाणा का एक अच्छा उदाहरण है। इन राज्यो से कितने ही सालो से गाय-भैंस कलकत्ता-बम्बई की तरफ जाते रहे है। सवर्धन के उपाय करने पर भी इन राज्यो के पशुओ का स्तर घटता ही जा रहा है। दक्षिण मे मद्रास

शहर के लिए ओगोल पशुओ का उपयोग होता था। आज ओगोल जाति करीब-करीब नष्ट हो गई है और जबतक गोसवर्धनीय सघन क्षेत्रो से पशु जाते रहेगे तबतक सवर्धन के प्रयत्न सफल कम ही होगे।

दूध का व्यवसाय करनेवाले ग्वालो को पशु खरीदने मे आसानी हो और वह महाजन के चगुल से छूटे, इसलिए कुछ कर्ज देने की भी व्यवस्था की जा रही है। किन्तु यह देखा गया है कि आसानी से कर्ज मिलने पर पशु खरीदने की ओर वृत्ति बढती जाती है। अपने पशुओ के सवर्धन के प्रति ध्यान कम होने लगता है और आखिर मे पशु तो एक दूसरे से ही खरीदे जाते है। जरूरत हो तो उन राज्यो के ग्वालो को कुछ समय के लिए कर्ज दिया जाय और आग्रह रखा जाय कि वे अपने ही पशु पैदा करे।

सब प्रकार के खेतो मे धान पैदा नही होते। धान पैदा करने के लिए कुछ खास परिस्थिति की जरूरत होती है। यही बात पशुपालन की भी है। चूकि शहर बस गये है, उनको दूध पूरा करना है। इसलिए वहा के ग्वाले पशु-सवर्धन ही करे, यह ठीक नही होगा। परिस्थिति का भी पशु-सवर्धन पर असर पडता है। ऐसे शहरो के लिए दूर से दूध लाना ज्यादा फायदेमद होगा नही, तो सवर्धन के लिए भी दुधारू पशु बाहर से आते ही रहेगे। उनका दूध घटता ही रहेगा।

दूध के व्यवसाय की दृष्टि से इस प्रश्न मे कितनी ही अडचने है। प्राकृतिक दृष्टि से दूध का स्वतत्र व्यवसाय बडे पैमाने मे भारत मे नही हो सकता। दूध का उत्पादन कम है, बडे चरागाहो का अभाव है और इन चरागाहो मे भी घास-चारा एक निश्चित मौसम मे ही मिलता है। जमीन पर खेती का इतना बोझ है कि स्वतत्र रूप से चारे की खेती के लिए जमीन रखना पोसाता नही। दूध के उत्पादन का खर्च काफी बढ जाता है और उस प्रमाण मे उसकी कीमत चुकाने की उपभोक्ताओ मे सामर्थ्य नही है। इन कारणो से दूध का उत्पादन किसान के घर मे ही हो और वह अपनी शक्ति के प्रमाण मे ही दूध उत्पन्न करे। बडे शहरो

के लिए इन छोटे किसानो से दूध एकत्र किया जाय और उसका वितरण सहकारी पद्धति से किया जाय। यह सब करने मे कुछ क्रियाए करनी पडेगी। उनके लिए देश मे ही साधन खडे करने होगे और उनका उपयोग शास्त्रीय ढग से करके खर्च मे कमी करनी होगी। यह सब करने मे कुछ समय लगेगा। जल्दी करने से हो सकता है कि फायदे के बजाय पशुओ को नुकसान ही पहुचे। जिस इलाके मे से दूध एकत्र करना है उसमे पशु-सवर्धन तथा राहत-कार्य पहले से ही शुरू करना चाहिए और दूध का व्यवसाय—उस प्रमाण मे पशुओ मे भी सुधार होता रहे— दूध के लिए पशु खरीदते रहने से सुधार-कार्य मे देरी होती है, विघ्न खडे होते है। आज पशु-सुधार मे मूल अडचन है पशुओ की खुराक की और जिस ढग से आज सरकारी कामकाज चलता है, उससे कहा सकता है कि इस प्रश्न पर गहराई से सोचा नही जा रहा है। एक तरफ पशु-रक्षा की बात होती है, दूसरी तरफ चरागाह कम करके खेती बढ रही है। घास-चारे की खेती की तरफ खास ध्यान नही दिया जाता है। धन कमानेवाली बाजारू फसलो को प्रमुखता दी जाती है। खली या दूसरे दाने या तो दूसरे व्यवसाय मे लगाये जाते है या विदेशी मुद्रा कमाने के लिए उनका निर्यात किया जाता है। इन सब बातो का पूरा विचार किये बगैर दूध बढाने की कल्पना करना उचित नही होगा।

दूध का व्यवसाय आज एक अजीब स्थिति मे है। दूध की माग दिन-प्रतिदिन जितनी बढ रही है इतनी तेजी से गोसवर्धन कार्य नही हो रहा है। अभीतक किसान दूध के व्यवसाय को एक उपधधे के रूप मे चला रहा है, किन्तु जब उसे स्वतत्र धधे का स्वरूप मिलता है तब धन कमाने की ओर ध्यान जाता है और चूकि माग से उत्पादन कम है इसलिए उसमे अनीति को काफी बडा स्थान मिल गया है। न तो दुधारू पशु सुरक्षित है, न दूध उत्पन्न करनेवाले सुरक्षित हे और न उपभोक्ता सुरक्षित हे। किसीको सतोष नही है। इस परिस्थिति को काबू मे रखने के लिए सरकार ने दूध के व्यवसाय को अपने हाथ मे लिया है

अर्थात् सरकार का लक्ष्य शहरी जनता को सस्ता दूध देकर उनको शात रखने की तरफ ज्यादा है । देश के विकास-कार्य मे पाश्चात्य देशो के अनुकरण को बहुत महत्व दिया जाता है । बडे-बडे कल-कारखाने खोलने की ओर प्रगति हो रही है । इससे दूध का व्यवसाय अछूता नही रहा । जहा कही दूध मिलता है वहा से उसे खरीद लिया जाता है । अनेक क्रियाए होती है, आखिर मे उसे ग्राहक के पास पहुचाया जाता है । इसके कारण तथा खर्चीली व्यवस्था के कारण दूध के दाम बढते जाते है । फिर भी यह मानना होगा कि यदि इस प्रकार की व्यवस्था न हो, तो अराजकता फैल जायगी और दूध मिलना दुर्लभ हो जायगा । इन योजनाओ के कारण आज तो शहरो मे दूध मिलता है, उसकी कीमत पर नियत्रण रहता है और हो सकता है कि यदि शुरू की भूलो को सुधार लिया जाय तो यह व्यवसाय देश के लिए लाभदायी हो । किन्तु एक बात की ओर सतर्क रहना होगा । बडे व्यवसाय के कारण छोटे व्यवसाय नष्ट न हो जाय और ग्रामीण जनता की माग के प्रति हम उदासीन न रहे । देश की आबादी का एक बहुत बडा हिस्सा देहातो मे रहता है । उन्हे भी घी-दूध की जरूरत रहती है । इतना ही नही, कुछ कारणो से शहर के निवासियो की जरूरत से ज्यादा रहती है । किन्तु दरिद्रता के कारण वे आज तो दूध का उपयोग नही कर सकते और उसका असर उनके स्वास्थ्य पर होता है । इस माग की तरफ भी ध्यान देना होगा । देहाती किसान केवल उत्पादन करे और उपभोग शहरवासी करे, यह स्थिति असह्य हो जायगी और यदि शहरवासी यह मानने लग जाय कि देहाती उनकी सेवा के लिए जन्म लेता है, तो समाज मे अशाति फैलेगी । इससे हमे बचना है ।

दूध का व्यवसाय सरकार पूरी तरह अपने हाथ मे रखे और किसी कारण व्यवस्था पर ठीक अकुश न रहे, तो हानि होने की आशका रहती है । आज की राज्य-व्यवस्था कुछ इस तरह की है कि अधिकारी वर्ग किसी प्रकार की जिम्मेदारी उठाना नही चाहते । मजदूर-वर्ग अपनी ही

थाली की तरफ देखता है, असहकार और घेराव की बात करता है। इस व्यवसाय में जमा हुआ व्यापारी-वर्ग संगठित होकर सरकार का विरोध करता है। इसका परिणाम यह होता है कि दूध के भाव बढ़ते हैं। वे साधारण जनता की खरीदने की शक्ति के बाहर होते हैं और सरकार को बड़े प्रमाण में नुकसान सहन करना पड़ता है या स्टैंडर्ड टोन्ड दूध के नाम पर मिलावट का सहारा लेना पड़ता है। उत्पादकों को चूसना पड़ता है। पशु-संवर्धन-संबंधी नीति भी कुछ स्पष्ट है, ऐसा नहीं लगता। नीति तो यह बताई जाती है कि भारत के दुग्ध व्यवसाय के लिए गोपालन पर जोर दिया जाय, कारण दूध के साथ बैल का प्रश्न भी जुड़ा है, किन्तु व्यवहार में देखने को मिलता है कि सरकारी डेरिया ज्यादातर भैंस का ही दूध पसंद करती हैं। स्टैंडर्ड टोन्ड या डबल टोन्ड दूध बनाने में सहूलियत होती है और लाभ में घी भी मिलता है। कितनी ही डेरिया गाय का दूध खरीदती ही नहीं। दूसरी एक यह भी नीति मानी गई है कि गाय तथा भैंस के दूध को एक से भाव दिये जाय। इसका कितना पालन होता है? दूध की उत्तमता घृतांश पर आंकी जाती है, किन्तु दूध-उत्पादन के लिए "क्रास-ब्रीड" पशुओं का संवर्धन हो, इसके प्रयत्न किये जा रहे हैं। "क्रास-ब्रीड" गाय के दूध में हिन्दुस्तान की गाय से भी घृतांश कम होता है।

गाय और भैंस की चर्चा काफी दिनों तक चलती रही। भारत जैसे गरीब देश में गाय और भैंस दोनों नहीं पनप सकते और जबतक भारतीयों का झुकाव भैंस के गाढ़े दूध की तरफ रहेगा तबतक गाय पनप नहीं सकेगी। केवल दूध के लिए ही भैंस पालना अर्थशास्त्र और अहिंसा की व्यवस्था में नहीं बैठ सकेगा। इसलिए यह माना जाता है कि आखिर हमें भैंस को छोड़ना ही होगा। ऊंची जाति की गाय और भैंस की तुलना करने से यह पता चलेगा कि अंत में गाय ही ज्यादा लाभदायी रहती है। किन्तु एक लम्बे जमाने से दूध की दृष्टि से गाय की उपेक्षा होती आ रही है। भैंस को दूध के लिए ही पाला जा सकता

है। इसलिए आज यह परिस्थिति बन गई है कि साधारण गाय साधारण भैंस से कम दूध देती है। शरीर में भारी होने के कारण उसे गाय से करीब एक-तिहाई ज्यादा भोजन देना पड़ता है। बंगलौर जैसे शहरों के अनुभव से यह कहा जा सकता है कि उचित ढंग से पाली जाय, संवर्धन के उचित तरीके अपनाये जाय, तो कुछ ही समय में गाय, खासकर वर्ण-संकर गाय, अपना क्षेत्र बना लेगी और भैंस को केवल दूध के लिए ही पालने से बचाया जा सकेगा। साथ-साथ खेती के बैलों की समस्या तो रहेगी ही और वे मिलेंगे केवल गाय से। यह कहा जाता है कि देश में कुछ प्रदेश ऐसे हैं, जहां भैंस ही पनप सकती है, गाय नहीं पनप सकती। किन्तु यह अनुभव हुआ है कि ऐसे स्थानों में खासकर शास्त्रीय ढंग से गोसंवर्धन किया जाय, तो भैंस की जगह गाय ले सकेगी। यह एक सम्भावना

तरफ होने के कारण जबतक गाय को पूरा सरक्षण नही दिया जायगा, गाय के दूध को प्रोत्साहन नही मिलेगा। इसलिए गो-सेवा सघ एव आश्रम ने एक नियम बनाया कि सदस्यो को गाय के दूध-घी का ही आग्रह रखना चाहिए। इस भावना का परिणाम सेवाग्राम मे देखने को मिल सकता है। जिस स्थान पर आधा सेर भी गाय का दूध नही मिल सकता था, वहा वर्धा के गोरस भडार के प्रयत्न से करीब ३०-४० मन दूध आसानी से पैदा हो सकता है। इसी दृष्टि से दो प्रयोग उल्लेखनीय है। यह माना जाता था कि बम्बई शहर मे गाय के दूध की माग नही है और इस कारण आरे कालोनी मे केवल भैस ही पाली जाती थी। गाय को उस कालोनी मे स्थान मिले, इसलिए एक ट्रस्ट कायम किया गया और ऊची जाति की कुछ गाये खरीदकर एक यूनिट बनाया गया। इसका प्रबध भी आरे मिल्क कालोनी पर ही रहा है। गत तीन-चार वर्षो के अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि गाय के दूध का उत्पादन भैस के दूध से सस्ता पडता है। ग्राहको मे इसके लिए काफी रुचि भी पैदा हो गई है। अब प्रयत्न किये जा रहे है कि कालोनी तथा आसपास के देहातो मे गाय पालने को प्रोत्साहन दिया जाय। एक प्रयोग राजस्थान के बीकानेर क्षेत्र मे भी किया गया। इस क्षेत्र के गोपालक गाय को ही प्राधान्य देते रहे है। वहा भैस करीब-करीब नहीं ही है। इन गोपालको से दूध खरीदकर उसे दिल्ली लाने की चेष्टा की गई और यह अनुभव हुआ कि केवल दूध की खरीद से ही गावो की माली हालत सुधरी और वहा के लोग पशु-सवर्धन के कार्य मे रस लेने लगे। यदि व्यवस्थित ढग से यह काम चलाया जाय, तो दूध-उत्पादन का यह एक आदर्श केन्द्र बन सकता है।

इतने सब अनुभव होने पर भी सरकारी दुग्ध-केन्द्रो का झुकाव भैस की ओर ही है। भैस का सवर्धन हो, इस प्रकार के प्रयत्न हो रहे है। कारण स्पष्ट दिखाई देता है। भैस के दूध मे से स्नेहांश निकाल लिया जाता है और घी की बिक्री कर कुछ आमदनी हो जाती है। भैस

का दूध टोन्ड ग्रौर डवल टोन्ड वनाने के काम मे ग्रा सकता है। इन सबके कारण केन्द्रो को कुछ अतिरिक्त ग्रामदनी हो जाती है। गाय के दूध मे यह गुजाइश नही है, इसलिए उसे पालने की प्रवृत्ति कम होती है। यह निर्विवाद है कि जबतक दूध को उचित बाजार नही मिलेगा तबतक गाय पनपेगी नही, भैंस के विरोध मे वह टिक नही पायेगी। इसलिए गाधीजी ने कहा था कि गाय को बचाने के लिए भैंस का सवर्धन बद ही करना होगा। किन्तु इस सबका यह मतलब नही होता कि भैंस की हिंसा की जाय। वह तो ग्राज ग्रपना सरक्षण कर लेती है ग्रौर यदि जरूरत पडी तो गाय को ऊचा उठाने मे जो ग्रनुभव मिलेंगे, जो शास्त्र निर्माण होगा, वही भैंस को भी उठा सकेगा। एक बार गाधीजी से पूछा गया था कि यदि देश-भर मे गाये ही रही, तो भैंस का क्या होगा? गाधीजी ने हँसते हुए जवाब दिया, "भैंस की जरूरत नही। जरूरत पडी तो भैंस-सेवा-सघ की स्थापना की जा सकती है।"

इन सब ग्रनुभवो को ध्यान मे रखकर गो-सवर्धन-परिषद ने शास्त्रज्ञो की मदद से एक नीति बनाई है ग्रौर उस नीति को सरकार

गोवव की चर्चा करते हुए १ फरवरी ४२ को वर्धा गो-सेवा-परिषद मे गाधीजी ने कहा था कि इस सवमे दोष तो हिंदुओ का ही रहा है। दूध का सारा व्यापार हिन्दुओ के हाथ मे रहा है, तो फिर हमे शुद्ध दूध क्यो नही मिलता है ? दूध मे पानी मिलाया जाता है और यह पानी भी शुद्ध नही होता। घी मे दूसरे पशुओ का घी तथा वनस्पति घी मिलाने मे आता है। दूध दुहाते समय 'फुका' जैसी क्रियाए करने मे आती है। वाजार मे जो घी विकता है, उसे यदि जहर कहा जाय तो ज्यादा सत्य होगा। न्यूजीलैड, आस्ट्रेलिया या डेनमार्क मे गाय का शुद्ध घी मिल सकता है, किन्तु हिन्द मे जो घी मिलता है, उसका कोई विश्वास नही होता।

दूध के गुणो का भी मनुष्य के शरीर पर असर पडता है। शहरी दूध मे अस्वच्छता के कारण कितने ही विकार पैदा हो जाते है। शहरी ग्वाला अपने पशुओ को घनी वस्ती मे रखता है, उसके कारण कितने ही रोग फैलते है। गदी जगह और अस्वच्छ हवा-पानी के कारण पशुओ का स्वास्थ्य खराव होता है और उसका असर दूध पर पडता है। दूध से सम्वन्ध रखनेवाला नौकर-वर्ग भी वीमारिया फैलाने मे मददगार होता है। दूध मे पानी आदि का मिश्रण किया जाता है और वह भी स्वच्छ नही होता, इत्यादि अनेक कारणो से दूध अमृत नही रहता, विप वन जाता है। देहाती पशुपालक अपने पशुओ को खुली हवा मे रखता है इस कारण कुछ हद तक रोग पर प्रतिवध हो जाता है, दूसरी ओर उप-भोक्ता उवालने के वाद ही दूध का उपयोग करता है, नही तो विशुद्ध दूध के कारण कितनी ही आपत्तिया खडी हो जाती।

दूध-व्यवसाय की इतनी गिरी हुई हालत को देखकर सरकार ने इसे अपने हाथ मे लेने का विचार किया। पहले वम्वई शहर मे आॅरे कालोनी का विकास किया। आगे चलकर कलकत्ता की हरिगटा कालोनी वनी, मद्रास मे माधवपुरम वसा, दिल्ली दूध-योज शुरू हुई। अव तो यह निर्णय किया गया है कि ५०,००० से ज्यादा वस्तीवाले हर शहर मे

दूध-योजना हो। इन योजनाओं में कल्पना यह है कि दूध-उत्पादन पशुपालक करे। उन्हें सब प्रकार के साधन दिये जाय और उससे दूध खरीदकर उसका वितरण दूध योजना द्वारा हो।

खानगी क्षेत्र में भी दूध-उत्पादन करनेवाली कुछ डेरिया है। गोशालाओ का भी इसकी ओर ध्यान गया है। उसका क्रमश विस्तार हो रहा है। कुछ सरकारी पशु-सवर्धन क्षेत्र तथा मिलिट्री डेरी फार्मों ने भी बहुत अच्छा काम किया है। मिलिट्री डेरिया मुख्यतया अपनी फौजो के लिए दूध का उत्पादन करती है। चौथी पचवर्षीय योजना मे दूध-व्यवसाय-सबधी नीति इस प्रकार निश्चित की गई है '

देश मे इतने बडे प्रमाण मे पशु-सख्या होते हुए भी प्रति व्यक्ति दूध का उत्पादन बहुत कम है। उत्पादन-केन्द्र बहुत छोटे और बिखरे हुए हैं। देहाती तथा शहरी दूध के भावो मे बहुत फर्क है। इसका यह परिणाम होता है कि ग्वाले शहर की तरफ आते है और गदी स्थिति मे अपने पशु रखते है।

दूध की योजनाओ के दो मकसद हैं। एक, उत्पादक को अपने दूध का लाभकारी बाजार मिले और उपभोक्ताओ को वाजिब दरो पर निश्चितता से दूध मिले।

आजतक के अनुभवो पर एक राष्ट्रीय दुग्ध-नीति बनाई जाय। इस उद्देश्य से चौथी पचवर्षीय योजना मे ध्यान मे रखा जायगा कि .

१ आज जो दुग्ध-केन्द्र चल रहे है, उनका पूरी क्षमता तक विकास किया जाय।

२ दूध का सग्रह प्राथमिक सहकारी सस्थाओ के द्वारा अथवा सर्विस को-आपरेटिव सोसायटी द्वारा किया जाय। प्राथमिक सस्थाओ को मिलाकर दूध यूनियन बनाई जाय और जहातक हो सके वहातक वह 'पास्चरायजेशन' अथवा दूसरे प्रक्रिया-केन्द्र चलाये।

३ सभव हो वहातक योजनाओ का दायरा बढाया जाय।

४ ग्रामीण दुग्ध-केन्द्रो की स्थापना की जाय और और खास चुनी

हुई जगहो पर दुग्व-उत्पादन तथा पशु-पालन का उचित समन्वय करे। जिन स्थानो पर आवोहवा तथा अन्य कारणो से दूध का उत्पादन वढने की सभावना हो, उन्हे प्राथमकिता दी जाय।

५ जिन स्थानो पर दूध के वाजार-व्यवसाय वढाने के आधार हो वहा नये दुग्व-केन्द्रो की स्थापना की जाय।

६ देश मे डेरी के उपकरणो के उत्पादन को वढावा दिया जाय।

७ पशु-सुधार के सव तरीको और नीतियो को अपनाया जाय।

८ दुग्व-व्यवसाय मे सहकारी तत्व को प्रोत्साहन दिया जाय।

समाज मे गाय के दूध का उत्पादन वढे और उसे उचित दाम मिले, इसलिए एक नीति सुझाई गई है। उसके अनुसार

१ जिन जगहो मे डेरिया देहातो से केवल गाय का ही दूध खरी-दती हे वहा वाजार-भाव के हिसाव से गाय के दूध का दाम दिया जाय।

२ जहा गाय तथा भैस दोनो का दूध खरीदा जाता हे वहा गाय के दूव का भैस के दूव के वरावर दाम दिया जाय।

३ जहा सरकारी तथा सरकार के अनुदान से डेरिया चलती हे वहा उत्पन्न होनेवाला गाय का सव दूध खरीद लिया जाय, और

४ सरकारी डेरिया केवल गाय का दूव तथा भैस का स्टेण्डराइज्ड दूध ही वेचे।

नई दूव-योजना की क्षमता रोजाना ६००० से १०००० लीटर तक होगी। रूरल डेरी की क्षमता ५०० से ४००० लीटर तक होगी।

यह सोचा गया है कि ३४ नई योजनाए चालू की जाय। चालू ५७ वढाई जायगी तथा ३६ योजनाओ का काम पूरा किया जायगा। इनके अलावा दूव के पदार्थ तैयार करने के २६ कारखाने खोले जायगे। १९८ रूरल डेरी सेटर तथा १२ वडी फीड कम्पाउड फैक्ट्री खोली जायगी। डेरी एक्सटेंशन प्रोग्राम इन योजनाओ का अविभाज्य अग रहेगा। इस प्रोग्राम के अनुसार सहकारी सस्थाओ की स्थापना, पशु

खरीदने के लिए कर्ज देना, दाने-चारे की व्यवस्था करना और पशु-पालको से स्वच्छ दूध उत्पादन करवाना आदि का समावेश होता है। उसीके साथ इस व्यवसाय की वृद्धि हो, इस हेतु प्रयोग करना तथा प्रशिक्षण देना आदि कार्य भी होगे।

भारत के दुग्ध-उत्पादन का आधे से ज्यादा दूध, दूध के पदार्थ बनाने के काम मे आता है। घी ३८ ७ प्रतिशत, मक्खन ६ ०१ प्रतिशत, दही ८ ६ प्रतिशत, खोया ४ ८ प्रतिशत।

दूध उत्पन्न करनेवाले चाहते है कि उनका सब दूध तरल स्थिति मे ही बिक जाय। किन्तु अनेक कारणो से यह नही हो सकता। इस कारण दूसरे पदार्थ बनाने पडते है। कुछ पशुपालक दूध के बाजार से दूर रहते है या अपने पशु लेकर घूमते रहते है, उनका दूध तरल स्थिति मे नही बिकता। वे घी बनाकर कुछ आमदनी कर लेते है। छाछ काम मे आ जाती है। यह अर्थशास्त्र मे अच्छा बैठता है, कारण पशुपालन का मूल हेतु दूध उत्पन्न करना न होकर बैल पैदा करना होता है। फिर भी दूध-बिक्री की व्यवस्था होने पर वे घी बेचना पसन्द नही करेगे। घी, खोया बनाने का उद्योग एक महत्त्वपूर्ण ग्रामोद्योग मानना चाहिए। इनके विकास

अपनाता नही। डेरी विभाग शहर के दूध तथा अन्य पदार्थों की माग पूरी करने मे लगा है। ग्रामोद्योग कमीशन इसे ग्रामोद्योग मानने को तैयार नही है। कारण इसका सबध पशुपालन विभाग से है। किन्तु जब पशु मर जाता है तो वह मृत पशु ग्रामोद्योग मे आ जाता है।

घी की कमी पूरी करने के लिए तथा आम जनता को सस्ती चिक्नाई मिलने के लिए वनस्पति का उत्पादन होने लगा। वैसे तो तिलहन का उपयोग बहुत समय से चलता आ रहा है। देहातो मे घानिया चलती थी, और तेल आस-पास के ग्राहको को ताजा मिल जाता था। खली पशुओ की खुराक मे काम आती थी। आगे चलकर इस ग्रामोद्योग का केन्द्रीयकरण किया जाने लगा, तेल के कारखाने बने सग्रह तथा वाहन की समस्या खडी हुई। उसे निर्गंध करके जमाया जाने लगा और वनस्पतिके लिए सीलबद डिब्बे आये। इस कारण वह महगा होने ही वाला था। देखने मे वह घी जैसा लगने लगा। घी मे मिलावट का एक अच्छा साधन बन गया। प्रचार तो यहातक हुआ कि उसमे घी के सब गुण है और सस्ता होने से घी की ऐवज मे काम आ सकता है। जनता की ओर से काफी विरोध हुआ। अनेक आरोप लगाये गए। मिलावट से बचने के लिए उसे रगा जाय, जमाया न जाय आदि अनेक सूचनाए की गई, किन्तु आखिर मे विजय हुई वनस्पति की। इतना ही हुआ कि वनस्पति घी के बजाय उसका नाम 'जमाया हुआ तेल' हो गया। आज तो उसने अपना स्थान कुटुम्बो मे बना लिया है। गरीबो को शुद्ध तेल भी नही मिलता और देश का घानी-उद्योग बन्द हुआ-सा हो गया। बैलो का एक काम गया, ताजी खली मिलना बन्द हो गया। घी के प्रति स्पर्धा बढी।

यही कहानी दूध के सम्बन्ध मे भी दुहरायी जा रही है। दान के रूप मे तथा खरीदकर भी दुग्धचूर्ण का आयात बडे प्रमाण मे किया जाता है। दूध सस्ता बिक सके, इस कारण सरकार इसका अपनी योजनाओ मे बडे प्रमाण मे ज्यादा उपयोग कर रही है। सरलता से मिल जाता है, इस कारण देश मे दूध के उत्पादन की ओर ध्यान मे कमी होती है। अब

तो वनस्पति घी के माफिक वह भी स्थिर होने लगा है। गाय की वृत्ति छीनने का साधन घी बन रहा है।

इतने से ही संकट पूरा नही होता। दूध की कमी को कम करने के लिए सोयाबीन, मूगफली आदि से दूध बनाने की बाते चल रही है, कारखाने खुल रहे है। दूध के सब गुणो का इसमे प्रतिष्ठान हो रहा है। भैंस का घी-दूध साधन-संपन्नो के लिए और गरीबो के लिए वनस्पति घी, टोन्ड, डबल टोन्ड दूध, वनस्पति दूध और बच्चो के लिए दुग्ध-चूर्ण से बना हुआ बेबी-फूड मिलता रहे, तो गोवधबंदी वालो के लिए ही गाय बचेगी।

पाच

# श्रमशक्ति बैल

भारतीयो की यह एक अभिलाषा हमेशा रही है कि अपने कुटुम्ब की निश्चितता के लिए कुछ जमीन हो और रहने के लिए घर हो। कितना भी सम्पन्न कुटुम्ब हो जबतक गाव मे उसका अपना घर न हो, खेती-बाडी न हो तबतक उसे समाज मे प्रतिष्ठा नही मिलती। इसी कारण उनका जमीन से लगाव होता है। देश की जमीन छोटे टुकडो मे बटी होने का यह भी एक कारण है और यह हिन्दुस्तान की सस्कृति का अग बन गया है। इस प्रकार खेती करनेवालो का मूल उद्देश्य कुटुम्ब तथा गाव की जरूरते पूरी करना होता है। साधारणत किसान प्रतिवर्ष अदाज लगा लेता है कि उसके कुटुम्ब के लिए, नौकर-चाकर के लिए, पालतू पशु-पक्षियो के लिए किस चीज की जरूरत होगी और उस हिसाब से वह अपना खेती का कार्यक्रम बनाता है। उसके उपरान्त जो जमीन बचती है उसमे नकद पैसे कमाने की फसले बोता है। फुर्सत के समय दूसरे व्यवसाय कर अपने समय का उपयोग करता है और कुछ आमदनी भी हो जाती है। खेती का मूल उद्देश्य स्वालम्बन रहा, न कि व्यवसाय। देहातो मे दूसरे व्यवसाय करनेवाले धोबी, तेली, चमार आदि ग्रामोद्योग मे लगे हुए भी कुछ जमीन पाना चाहते है। गाव का बनिया दुकान लगाता है, कुछ लेन-देन करता है, फिर भी जमीन से सम्बन्ध रखता है। कुटुम्ब के लिए उत्पादन हो, इसकी भी आशा रखता है।

देश की जमीन छोटे-छोटे हिस्सो मे बटी है। इस कारण उत्पादन के साधन भी ऐसे हो, जो इस परिस्थिति के अनुकूल हो। स्वावलम्बन

का विचार करनेवाला काश्तकार बाजार पर या बाहर के पैसे पर ज्यादा निर्भर रहना नही चाहता। जो चीज आसानी से घर पर ही मिल सकती है, उसे सम्हालने मे, बाहर की वस्तु खरीदनी नही पडती। वही साधन पसन्द करता है।

भारत मे करीब ३६ ७ करोड एकड जमीन पर खेती होती है और करीब २५ करोड लोग खेती पर निर्वाह करते है। देश मे करीब ५५ प्रतिशत कुटुम्ब ऐसे है, जिनके पास प्रति व्यक्ति २ ५ एकड से कम जमीन है। मनुष्य तथा पशु दोनो की आबादी तेजी से बढती जा रही है। जमीन बढाने की गुजाइश तो है नही। इसी जमीन से ज्यादा उत्पादन लेना होगा। ज्यादा लोगो को काम देना होगा। उत्पादन बढाने के लिए खेत बडे हो, महगे साधन उपयोग मे लाये जाय, यह आवश्यक नही है। भारत मे प्रत्येक खानेवाले के पीछे करीब ७ ५ एकड जमीन आती है। किन्तु इसका औसत जापान मे केवल २ एकड ही है और अमरीका मे २१५ ५ एकड। भारत मे प्रति एकड १२५६ पौड धान, ६५४ पौड गेहू और ८३८ पौंड मक्का होती है, जबकि जापान मे प्रति एकड ४२३८ पौंड धान, २१०६ पौड गेहू और १६३६ पौड मक्का होती है और अमरीका मे ३३४६ पौड धान, १२७६ पोड गेहू और २८६१ पौड मक्का होती है। जापान भी भारत के समान छोटे खेतिहरो का देश है। वहा की अधिकतर जोत पाच एकड से कम हे, जबकि भारत की अधिकतर जोत पाच एकड से ज्यादा है। छोटे खेत होने के कारण जापान मे खेती की प्रगति रुकी नही है, बल्कि गत ५० वर्षो मे आमदनी दुगुनी हो गई है। जापान के अनुभव से यह कहा जा सकता है कि उद्योगो मे विकास होने पर भी जमीन का भार हल्का नही हुआ है। दूसरी ओर अमरीका एक नया देश है, साधन-सम्पन्न है। उसके पास जोत मे जमीनका प्रमाण ज्यादा है। फिर भी प्रति एकड उत्पादन की दृष्टि से वह जापान से पीछे है। जापान के अनुभव से भारतीय किसान काफी सीख सकता है। अगर कोई देश अपनी बुनियादी जरूरते खाना, कपड़ा **और**

मकान खुद पूरी नही करता, तो उसे आजाद नही कहा जा सकता। हमारी खेती अर्थनीति एक ऐसी चीज है, जो हमे अपने पावो पर खडा कर सकती है। हमारा देश हमेशा से खेतिहर देश रहा है और जो भी उद्योग-धधे यहा चलते थे, वे खेती से जुडे रहते थे। अनाज उपजाने का जो अमरीकी ढग हम अपना रहे है, उससे खेती एक धधे के वजाय एक कारखाना बन जाती है। कारखाने की खूबी यह हे कि उसे इस वात से कोई मतलब नही रहता कि लोग हिन्दुस्तान मे या दुनिया मे कही भी भूखे मर रहे हैं। उसका तो वस एक ही मकसद होता है कि दाम ऊचे वने रहे, फसले वही वोई जाय, जिनसे अधिक धन कमाया जा सकता हो। फिर वे जनता के लिए उपयोगी ही हो, यह जरूरी नही। इन्सानियत का जरा भी खयाल नही किया जाता। वस खयाल इसी वात का रखा जाता है कि पूर्ति कम की जाय, ताकि माग वनी रहे—दाम चढे रहे। अमरीका मे जमीन भरपूर है, इसलिए वहापर लोग सव प्रकार के तरीके अपनाकर महाजनी के खातिर अनाज पैदा करते है। भारत खेतिहर देश होते हुए भी अपनी गरज के लिए अमरीका से उत्तरोत्तर अधिक अनाज मागता रहता है। इस परिस्थिति मे उसे आजाद किस प्रकार कहा जा सकता है ?

यदि खेती द्वारा आत्मनिर्भर होना है, तो खेती के तरीको मे सुधार करना होगा। उत्पादन वढाना होगा। यह सब करते समय स्वावलम्बन का सिद्धान्त हमेशा ध्यान मे रखना होगा। साधनो के लिए, यन्त्रो-अस्त्रो के लिए, खाद के लिए, वुद्धि के लिए यदि हम अमरीका पर निर्भर रहनेवाले है, तो हमारी स्वतन्त्रता भी खतरे मे पड सकती है।

खेती का उत्पादन वढाने का आयोजन करते समय आज की खेती की परिस्थिति का अध्ययन करना होगा। खेती छोटे-छोटे जोतो मे वटी है। खातेदार गरीव और अज्ञानी है, किन्तु उसे अपना तथा कुटुम्व का पोषण उसी जमीन से करना है। इसलिए साधन उपलब्ध करते समय यह देखना होगा कि वे उसकी परिस्थिति मे कहातक लाभदायी हो

सकेगे । कई वार अज्ञानतावश साधन खरीद लिये जाते है, किन्तु सही उपयोग न होने से आखिर मे नुकसान ही होता है। कितने ही वेकार पडे रहते है। मरम्मत, घिसाई आदि का खर्च महगा पडता है। इस कारण मदद के बजाय यह वोझ वन जाता है।

बहुत पुराने जमाने से बैल खेती मे श्रम का स्रोत वना है। खेती के सव काम केवल मनुष्य-शक्ति से पूरे नही हो सकते। इसलिए उसने बैल का सहारा लेना सीखा। भारत की अर्थव्यवस्था मे वैल को वहुत वडा तथा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। हमारी अर्थव्यवस्था का मूल आधार खेती है और बैल खेती की रीड है। ३६ ७ करोड एकड जोत के लिए हम करीव ७ ५ करोड वैल पालते है। इन वैलो से हमे ३ ५ करोड अथवा ३९१६ ५ करोड गैलन डीजल के बराबर शक्ति मिलती है, और बैल पलते है खेत मे पैदा होनेवाले घास-फूस पर। उनकी खरीद के लिए किसान को खास पूजी नही देनी पडती। वे अक्सर घर पर ही पैदा होते है और वढते है। खेती के साधनो की भी वही स्थिति है। वे गाव मे या कस्बे मे वन जाते है, आसानी से टूट-फूट ठीक की जाती है और उनके उपयोग मे भी ज्यादा कठिनाई नही पडती।

किन्तु परिस्थिति सतोषजनक है, यह भी नही कहा जा सकता। इसमे सुधार करने का काफी अवकाश है। वैल तथा औजारो के सुधार से खेती का उत्पादन काफी मात्रा मे वढाया जा सकता है, यह अनेक प्रगतिशील किसानो का अनुभव रहा है। ट्रैक्टर तथा यन्त्रो के उपयोग से खेती का उत्पादन वढता है, यह नही कहा जा सकता। उससे तो इतना ही होता है कि आदमी का साधन न हो तो भी काम जल्दी से हो जाता है। थोडे समय मे, वडे प्रमाण मे जमीन जोती जा सकती है।

इस सम्वन्ध मे कुछ प्रयोग किये गए है। प्रयोजन था देशी हल की ट्रैक्टर से चलनेवाले हल से तुलना करना और यह जान पडा कि सुधरा हुआ देशी हल उपयुक्त साधन है।

भारतीय अनुसधान क्षेत्र नई दिल्ली के एक कृषि-विशेषज्ञ

श्री ए० आर० खान ने १९४२ से १९४७ तक बीज भूमि तैयार करने सम्बन्धी कई प्रयोग किये। उसमे अनेक प्रकार के साधनो का उपयोग किया था और बैल से चलनेवाले तथा ट्रैक्टर से चलनेवाले हल की तुलना की थी। यह प्रयोग करनाल मे हुआ था।

जमीन का एक टुकडा ट्रैक्टर और दूसरे साधनो से ७ इच गहरा जोता गया। उसके वाद कल्टीवेटर और हसे चलाये गए थे। दूसरे टुकडे को बैल के विकटी हल से ४-५ इच गहराई मे जोता गया। उसके वाद देशी हल चलाया गया। यह क्रिया छ साल तक चलती रही। परिणाम यह कि पहले टुकडे मे बोये गेहू के उत्पादन का ६ साल का औसत प्रति एकड १० ९८ मन रहा, जवकि दूसरे टुकडे मे वह १२ ६६ मन था। दोनो टुकडो मे बाकी सव क्रियाए एक-सी थी। इस प्रयोग का यह नतीजा निकला कि गेहू की खेती के लिए ट्रैक्टर से जुताई करना लाभदायी नही होता। पानी देने या गिरने के वाद जमीन वैठ जाती है। उस कारण जमीन की हवा तथा नमी का सतुलन विगड जाता है।

इसी प्रकार के अनुभव और कई जगह प्राप्त हुए है। किन साहब और उनके साथियो को राथमस्टेट मे यह अनुभव हुआ कि जमीन को ४-५ इच से ज्यादा गहरे जोतने की जरूरत नही है। श्री लो और श्री नज्मुद्दीन का कहना है कि सुधरे हुए देशी हल से उथली जोत करना ज्यादा लाभदायी होता है। इसी बात की पुष्टि एलन साहव ने भी की है। ऐसे अनेक प्रयोगो से यह सिद्ध हो गया है कि जमीन को ठीक से तैयार करना, खाद देने जितना ही महत्वपूर्ण है और यह कार्य बैल तथा सुधरे हुए देशी औजारो के द्वारा ज्यादा व्यवस्थित रूप से किया जा सकता है और अनाज का उत्पादन वढाया जा सकता है।

## ट्रैक्टर और बैल : एक तुलनात्मक अध्ययन

ट्रैक्टर से खेती करने और बैलो से खेती करने की खास-खास बाते नीचे दे रहा हू, ताकि उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके ।

| ट्रैक्टर | बैल |
|---|---|
| १ ट्रैक्टर मे आएदिन खराबी होती रहती है । | आजकल बैलो के बीमार पडने का औसत अपेक्षाकृत बहुत कम हो गया है । |
| २ ट्रैक्टर के खराब हो जाने पर सारा काम ठप्प हो जाता है । काम का नुकसान न हो, इसके लिए एक फालतू ट्रैक्टर रखना जरूरी हो जाता है, जिसमे काफी रुपये खर्च हो जाते है । | बैल के बीमार पडने पर काम का थोडा ही नुकसान होता है और अगर बीमारी गभीर नही है, तो दूसरे काम नही रुकते । |
| ३ बिगडे ट्रैक्टर की मरम्मत का खर्च बहुत ज्यादा बैठता है । | बीमार बैल की दवा-दारू का खर्च मामूली होता है । |
| ४ ट्रैक्टर से खेती के लिए जमीन के काफी बडे प्लाट की जरूरत पडती है । अत भूमि को समतल करने तथा कटाव रोकने की कार्रवाई काफी महगी होती है । | छोटे प्लाटो मे चलता है तथा भूमि समतल करने और कटाव रोकने मे ज्यादा खर्च नही करना पडता । |
| ५ ट्रैक्टर तथा उपकरणो मे विदेशी मुद्रा खर्च होती है । | इसकी चमडी आदि बेचकर विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है । |
| ६ ट्रैक्टर खाद नही पैदा करते । | बैल से प्रतिदिन गोबर और मूत्र प्राप्त होता है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बढती है । एक बैल |

| | ट्रैक्टर | बैल |
|---|---|---|
| | | की औसन १२ वर्षो की जिन्दगी मे हमे प्रतिवर्ष रु० १८७ २७ के मूल्य की खाद मिलती है। वैल अपने जीवन मे अपने मूल्य की तिगुनी कीमत खाद के रूप मे देता है। यह मुद्दा वहुत महत्वपूर्ण है।<br>एक वैल से<br>गोवर एन पी० २०५ के २०<br>१५१२० ६१ ३० १५<br>पौ० पौ० पौं० पौ०<br>मूत्र<br>६४८० ६५ ८८<br>पौ० पौ० पौ०<br>योग १२६ ३० १०३<br>पौ० पौं० पौ० |
| ७ | ट्रैक्टर से खेती करने से खेत मे छोटी-छोटी नहरे और गढे वन जाते है, इससे भूमि समतल नही रह जाती, जो पौवो के लिए वहुत जरूरी है। | वैल से खेती करने मे भूमि कही असम हो भी तो वरावर हो जाती है। |
| ८ | मानसून के दिनो मे अक्सर ट्रैक्टर जमीन मे धस जाता है और उसे निकालने मे दूसरे ट्रैक्टर की जरूरत पडती है। | ऐसी कोई वात नही होती। |
| ९ | ट्रैक्टर-चालक को पूरा प्रशिक्षण देना पड़ता है। | हरवाहे को मामूली प्रशिक्षण ही काफी होता है। |

| | ट्रेक्टर | बैल |
|---|---|---|
| १० | अधिक गर्म हो जाने से ट्रेक्टर खराव हो जाता है। | इससे ऐसी कोई वात नही होती। |
| ११ | वोल्ट, नट, सफाई, पानी आदि के मामले मे तनिक भी असावधानी करने से ट्रेक्टर बेकार हो जाता है। | बैल को भरपेट खिलाते रहने के अलावा कोई खास ध्यान देने की जरूरत नही पडती। |
| १२ | ट्रेक्टर का आहार खर्चीला होने के साथ-साथ उसे देने के लिए खास तकनीक और देख-भाल की जरूरत पडती है। | बैल को भूसा, ज्वार, मक्का, धान का भूसा आदि दिया जाता है, जो फार्म मे ही मिल जाते है। रातिव मे गेहू तथा चावल की चूनी, चना और दाल का भूसा तथा मनुष्यो का छोडा गया खाद्य पदार्थ दिया जाता है। |
| १३ | ट्रेक्टर आसानी से नही मिलता और दुबारा वेचने पर उसकी वाजिव कीमत भी नही मिलती। | बैलो को जब चाहे खरीदा-वेचा जा सकता है और वह भी वाजिब कीमत पर। |
| १४ | ट्रेक्टर फार्म मे तैयार नही किया जा सकता। | बैल फार्म मे तैयार किया जा सकता है। |
| १५ | डीजल मे मिलावट की जाच आसानी से नही की जा सकती और इससे ट्रेक्टर जल्दी खराव हो जाता है। | बैल को दिया जानेवाला खाना फार्म मे पैदा होता है और उसमे इस तरह का कोई खतरा नही है। |
| १६ | ट्रेक्टर मे ६ साल के वाद रद्दो-वदल करने की जरूरत पडती है। | १२ साल वाद स्थानपूर्ति की जरूरत पडती है। |

ट्रेक्टर के मुकाबले बैल की कार्य-शक्ति अधिक ठोस है। आपने देखा होगा कि बैलो की एक जोडी, जो पुराने ढग की बैलगाडी मे मुश्किल से २०-३० मन बोझ ढो सकती थी, अब रबर टायर और बाल बेरिंग से युक्त बैलगाडी मे साधारणतया १०० से १२५ मन बोझ ढो सकती है। इसी प्रकार दूसरे औजार ईजाद किये गए है, जिनके प्रयोग से बैलो की कार्यक्षमता चौगुनी से ज्यादा बढ गई है। पहले जो एक जोडी बैल मुश्किल से १० एकड भूमि जोत पाते थे, अब आसानी से ४० एकड जोत देते है।

इस विवरण का हेतु यन्त्रो का विरोध नही। इनकी केवल मर्यादा ही बताने का प्रयत्न है। जिन बैलो को हमने पाला उनकी वृत्तिच्छेद कर उन्हे नाकामयाब बनायेगे, तो हम उन्हे बचा नही सकेंगे। अत मे गोहत्या की तरफ झुकना पडेगा। एक बात गाधीजी ने इस सबध मे चर्चा करते समय कही थी कि उनका विरोध यन्त्रो से नही है, किन्तु यन्त्रो की लालसा से है। यन्त्रो से श्रम का बचाव होता है, किन्तु उससे लाखो को बेरोजगार होकर भूखो भी रहना पडता है। समय और श्रम का बचाव तो माना जा सकता है, किन्तु वह एक वर्ग का नही, समूची मानव-जाति का होना चाहिए। इने-गिने लोगो के पास सम्पत्ति का सचय न हो, किन्तु वह सबके पास रहे। आज तो थोडे-से मनुष्यो को करोडो की गर्दन पर चढाने के लिए यन्त्रो का उपयोग होता है। यन्त्रो के उपयोग के पीछे प्रेरक कारण श्रम का बचाव नही, धन का लोभ है। यान्त्रिक सशोधन तथा विज्ञान को लोभ का सर्वप्रथम साधन नही बनना चाहिए। उससे मजदूरो की शक्ति से ज्यादा काम नही लिया जा सकेगा और फिर यन्त्र अडचन के बदले सहायक बन सकेंगे। उद्देश्य यन्त्र के विनाश का नही है, मर्यादा आकने का है। हम जो कुछ करते है, उसमे मानव-हित का विचार होना चाहिए। मानव के अगो को बिना काम के जड और निरुपयोगी बनाने की तरफ यन्त्रो की प्रवृत्ति नही होना चाहिए।

ट्रेक्टर एक यन्त्र है, उसी प्रकार बैल भी एक यन्त्र है। किन्तु बैल

ट्रैक्टर के समान शक्तिशाली नही होता। बैल एक जीवित यन्त्र है और ऐसे निरुपद्रवी प्राणी से सम्बन्ध के कारण मानव संस्कृति आगे बढी है। बैल मे एक और भी खास बात है कि उसका उपयोग अनेक कार्यों मे आसानी से हो सकता है। खेती के अनेक कार्यों मे उनका उपयोग होता है। वाहन के कार्य मे भी वह इतना ही उपयोगी है। फुर्सत के समय मे वाहन तथा ग्रामोद्योगो के छोटे-मोटे कार्यों मे बैल का उपयोग कर ग्रामीण अपनी आमदनी बढाकर खेती का भार कम कर सकता है। यन्त्र, ट्रको, बसो आदि के कारण बैलो मे बेकारी बढती जा रही है। उनको जीवित रखने के लिए कुछ ग्रामोद्योग और देहाती वाहन-कार्य सुरक्षित रखने चाहिए। कच्ची सडको पर मोटरे चलाने से वे जल्दी घिस जाती है और निकम्मी हो जाती है। आखिर मे देश का नुकसान ही होता है और यह भी देखा गया है कि थोडे अन्तर के लिए और कम बोझ के लिए बैलगाडी से मोटर ज्यादा महगी पडती है। जो काम बैलो से नही हो सकता उसी काम के लिए यन्त्रो का उपयोग किया जाना चाहिए।

बैलो की सख्या पर नियन्त्रण करना होगा। यह हो सकेगा उनकी कार्यक्षमता बढाने से। प्रत्येक किसान अपने लिए अलग बैल रखे, इसके बजाय यदि बैलो का सामुदायिक उपयोग होगा, तो कितनी ही शक्ति बचेगी और सामुदायिक खेती को प्रोत्साहन मिलेगा। औजारो मे सुधार करने से उनकी कार्यक्षमता बढेगी और अत मे प्राणहीन यन्त्रो पर हमे कम निर्भर रहना पडेगा।

खेती के यन्त्रीकरण का एक अनुभव बताना लाभदायी होगा। आश्रम की खेती मे सुविधा हो, इस हेतु एक मित्र ने यन्त्र देने की व्यवस्था की। लोभ के कारण हम मदद लेने को तैयार भी हो गये। गाधीजी ने समझाया कि इसका अर्थ यह है कि बैल पर हमारी श्रद्धा कम हो रही है और एक बार यह घुसा तो फिर ये निकलनेवाला नही है। आगे चलकर यही अनुभव हुआ। पशुलोक मे पशु पालने के सब साधन होते

हुए भी ट्रेक्टरो का मोह हम छोड नही सके। कुछ ट्रेक्टर, ट्रक और दूसरे साधन प्राप्त करने की कल्पना थी। एक बार काम शुरू होने पर उन्हे हटा दिया जायगा और उनकी जगह बैल लेगे। कुछ शुरुआत की, किन्तु बैलो के लिए भरपूर और सस्ता चारा-दाना होते हुए भी और सब मजदूर किसान का धधा करनेवाले होते हुए भी व्यवस्थापक यत्रो की तरफ ही झुके रहे। कारण, उन्हे थोडे लोगो से काम लेना आसान जान पडता था और हमारे दूसरे सलाहकार भी यत्रो को प्रोत्साहन देते थे। वस्तु-स्थिति कुछ ऐसी बन गई कि पशुपालन विभाग के अधिकारियो से यत्रो के लिए पैसा मजूर कराना सरल था, किन्तु बैल-जोडी या सुधरे हुए देशी हल की मजूरी नही मिल पाती थी। महगे होते हुए भी एक बार प्रवेश होने पर यत्र की जगह बैल लाना असभव-सा हो गया। यह अनुभव है पशुओ की हिमायत करनेवाले पशु-पालन-विभाग का। दूसरे क्षेत्रो मे, जहा पशुपालन की बात नही होती, वहा तो यत्रो का ही प्रचार होगा, यह मान सकते है।

देश मे खेती तथा ग्रामोद्योग के लिए बैलो की माग बढी और उसकी पूर्ति के लिए पशुपालको का एक स्वतत्र वर्ग खडा हुआ। ये लोग अपने रेवड को लेकर चारे-पानी की खोज मे घूमते रहते है। गोपालको का एक वर्ग बन गया है। चरागाहो की कमी तथा अन्य कारणोसे ये कठिनाई मे पड रहे है और समाज के लिए एक प्रश्न खडा हो रहा है। किसान तथा गोपालक के बीच मे आएदिन झगडे होते रहते हैं। किसान को यह समझ मे नही आता कि इन्हीके कारण सस्ते तथा ताकतवर बैल प्राप्त होते है। गोपालक जमीन के बारे मे किसान को अपना प्रतिस्पर्धी मानता है। गाधीजी ने साथियो को लेकर दाडी मार्च किया था। उधर आश्रम के पास बसनेवाले इन लोगो ने गोपालको को हटाया और उन्होने आश्रम की फसल बर्बाद करना शुरू की। खासा झगडा शुरू हुआ। मार-पीट हुई। गोपालक मानते थे कि चूकि आश्रम के पास धन है, इसलिए वे जमीन खरीद लेते है और हमे भगा देते है।

हम भी समाज के अग है, समाज की सेवा करते है, इसलिए हमे भी जीने का अधिकार है। गाधीजी इस दलील के कायल हो गये और उन्होने सुझाया कि गोशाला का कर्त्तव्य इन लोगो को सुरक्षित रखना भी है। इस कारण इन घुमक्कड पशुपालको को बसाने की योजना बनी और गुजरात राज्य मे कितनी ही सहकारी समितिया स्थापित की गई।

छह

# भूपोषण-खाद

हमारे देश मे अनेक वर्षो से खेती होती आयी है, फसले उगाई जाती हे और एक बडी मनुष्य-सख्या का तथा अनेक पशु-पक्षियो का पालन होता आ रहा है। उत्पादन चलता आ रहा है। इसका मूल कारण जमीन, वनस्पति और पशुओ का अटूट सवध है। वे एक-दूसरे के पूरक ही नही, वल्कि समाज को सुखी और समृद्ध वनाने मे महत्वपूर्ण योगदान देते है। यह सत्य हमारे पूर्वजो ने युगो पहले पहचान लिया था। उन्होने देखा कि जमीन पर वनस्पति उगती है, उसका उपयोग पशु-पक्षी अपने भरण-पोषण के लिए करते है। शरीर के उपयोगी तत्वो को उपयोग मे लाते है। मलमूत्र की खाद से जमीन की उर्वरा-शक्ति कायम रहती है और वढती है। वह बढने के कारण वनस्पति को ज्यादा पोषण मिलता है और पशु-पक्षी पलते है। यह क्रम निरतर चलता आ रहा है। जबतक यह चक्र चलता रहेगा तबतक फसले उत्पन्न होती रहेगी।

खेती की जमीन एक बहुत बडा कारखाना है। असख्य जीव-जन्तु उसमे भरे पडे है। वे अनेक प्रकार के पदार्थो को और वनस्पति को आहार वनाने मे लगे रहते है। इन जीवाणुओ को अपना काम करने मे मदद मिले, उचित मात्रा मे नमी तथा हवा मिले, इसलिए किसान जमीन के कणो की फेर-वदल करता रहता है। उनके पोपण के लिए सामग्री मिलती रहे, इसलिए खाद के रूप मे सेन्द्रिय पदार्थ डालता रहता हे। भारतीय किसान ने अनुभव किया कि सेन्द्रिय पदार्थों (घासपात) को

सीधे जमीन मे मिलाने से उनके गलने मे काफी समय लगता है, इसलिए यह क्रिया अलग से करने की परिपाटी चली। खाद के लिए हरी फसल बोने से जमीन ज्यादा समय तक घिरी रहती है। इसलिए उसका उपयोग कपोस्ट (खाद) बनाने मे होने लगा। जमीन की तरह पशुओ के शरीर मे भी असख्य जीवाणु रहते हैं, अनेक रसायन पैदा करते हैं और उनसे अन्न पैदा होता है। पशु-शरीर मे तो वनस्पति का कुछ थोडा-सा हिस्सा ही काम मे है, शेष मलमूत्र द्वारा जमीन को ही मिलता है और उसका उपयोग वनस्पति के अन्न के लिए ही होता है। यह भी अनुभव-सिद्ध है कि खाद के लिए सीधे खली आदि पशु-अन्न का उपयोग करने के बजाय यदि उसका उपयोग पशु-पोषण मे किया जाय, तो पशु तथा वनस्पति दोनो को लाभ मिलेगा।

एक बार गाधीजी इदौर गये थे। वहा उन्होने डा० हवर्ड की कपोस्ट बनाने की पद्धति का अध्ययन किया और कम्पोस्ट के जरिये उपयोगी सेन्द्रिय खाद बने, उसके भी प्रयत्न किये। इस सम्बन्ध मे उनका एक विस्तृत लेख भी है।

भारत मे करीब २३ करोड गो-पशु तथा भैसे हैं। इनमे से १६ करोड बडे पशु और ६ ७ करोड बच्चे है। (३-१ बडा पशु) इस हिसाब से खाद पैदा करनेवाले १८ करोड बडे पशु हो जाते है। अनुमान लगाया गया है कि इनमे से करीब दो-तिहाई पशु देहातो मे रहते है। यदि इन पशुओ के मलमूत्र का पूरा उपयोग किया जाय, तो करीब १८ टन खाद मल सकेगी। उसमे १४७६ करोड पौंड नाइट्रोजन, २१६ करोड पौंड फास्फरिक एसिड और ६७२ करोड पौंड पोटाश होगा और यह सब पैदा करने के लिए देहातियो को कुछ खर्च नही करना होगा। न देश को किसी विदेशी मुद्रा की जरूरत रहेगी। देहातो मे पशुधन छोटे-छोटे पशु-पालको मे बटा हुआ है। वे अपने फालतू समय का उपयोग करके इतनी सम्पत्ति पैदा कर सकेगे। यदि यह मान लिया जाय कि १ पौंड नाइट्रोजन से १० पौंड अनाज बढता है, तो १४७६ पौंड नाइट्रोजन से १४७६०

करोड पौंड अनाज वढेगा । रासायनिक खाद केवल नाइट्रोजन ही देगा। किन्तु इस खाद के साथ काफी मात्रा मे सेन्द्रिय पदार्थ होगे और इससे जमीन का पोत सुधरेगा । इसके अतिरिक्त भेड, वकरी, घोडे, ऊट, मुर्गी आदि भी वडी सख्या मे है । इनके तथा ५० करोड आदमियो के मलमूत्र से अच्छी मात्रा मे उपयुक्त सेन्द्रिय खाद तैयार की जा सकती है । देश को खाद की दृष्टि से आत्मनिर्भर किया जा सकता है ।

पशु-सख्या का करीब एक-तिहाई हिस्सा शहरो मे रहता है । इनका मलमूत्र खाद की दृष्टि से काम मे नही आता । इतना ही नही, वह सफाई की कितनी ही समस्याए खडी करता है । कितनी ही जगह उसे नदी के पानी के साथ वहा दिया जाता है या दूसरे उपयोग मे लाया जाता है । मनुष्य और पशुओ के मलमूत्र को मिलाकर खाद वनाया जाय तो कितनी ही एकड जमीन मे खाद की समस्या हल हो सकती है ।

इतने सब साधन होते हुए भी उनकी उपेक्षा करके रासायनिक खाद की तरफ देश झुकता जा रहा है । रासायनिक खाद प्राप्त करने के लिए एक बडे प्रमाण मे विदेशी मुद्रा खर्च होती है । नये कल-कारखाने शुरु करने के लिए पूजी को रोकना पडता है और इस प्रकार प्राप्त किये हुए खाद का वितरण करने के लिए कार्यकर्त्ताओ का जाल फैलाना पडता है । देहाती काश्तकार स्वावलम्बन की ओर से हटकर दूसरो तथा सरकार पर अवलबित हो जाता है । परिस्थिति की गुलामी वढती जाती है ।

महाभारत मे एक प्रसग है । देवी श्री गाय के पास आती है और कहती है कि वह गाय के अग मे रहना चाहती है । विचार करने के वाद गाय उसे अपने मूत्र तथा गोवर मे स्थान देती है । पशुओ का मलमूत्र श्री यानी सपदा वन जाता है । क्या महाभारत को पवित्र माननेवाले उस श्री की कदर करते है ? मूत्र को वर्वाद होने देते है और जमीन की उर्वरा-शक्ति कायम रखने के लिए भागते रहते है रासायनिक खाद की ओर ।

यह तो रही महाभारत-काल की वात । आज के वैज्ञानिक युग मे

इसे कौन मानेगा ? त्रुटिपूर्ण खुराक से उत्पन्न होनेवाली बीमारियो के विशेषज्ञ लेफ्टिनेंट कर्नल आरमेरसन ने रॉयल कमीशन ऑफ एग्रीकल्चर को एक स्मृतिपत्र दिया था। उसमे नीचे लिखी बातो का उल्लेख किया गया था

"यह सिद्ध हो चुका है कि जबतक अन्न के क्षार के साथ आक्सिमोन्स काफी मात्रा मे नही रहते तो पशु तथा वनस्पति की वृद्धि नही होती। उनके प्रजनन-सबधी गुणो का विकास नही होता। ये तत्व प्राणी तथा वनस्पति मे विटामिन जैसा काम देते है। उन्हीके कारण जमीन मे बसनेवाले अनेक तत्व वनस्पति की खुराक बनते हैं। विटामिन की वृद्धि मे भी उनका योग होता है और इसी कारण वनस्पतिजन्य खुराक मनुष्य तथा पशुओ के काम मे आती है।"

आक्सिमोन जमीन के अन्दर घुलनेवाले सेन्द्रिय पदार्थो से बनते है और यह पाया गया है कि इन परिवर्तनकारी कीटाणुओ का सबसे अच्छा भोजन है पशुओ के मलमूत्र से तैयार किया हुआ कम्पोस्ट।

जमीन को दी जानेवाली खाद का असर अन्न के पुष्टिकारक तत्वो पर भी होता है। दक्षिण भारत मे ज्वार-बाजरे की खेती बहुत होती है। यह देखा गया है कि यदि किसी खेत मे सालो तक लगातार खाद दिये बगैर यह फसल बोयी जाय तो अनाज की पोषण-शक्ति कम हो जाती है। कभी-कभी उनमे कुछ प्रकार के विष का भी निर्माण हो जाता है। यह भी देखा गया है कि रासायनिक खाद के बजाय जिन फसलो को कपोस्ट या कूडे-कचरे का खाद दिया जाता है, उनकी पोषण-शक्ति तथा विटामिन का अनुपात कई गुणा ज्यादा होता है। गेहू की फसल के बारे मे उनका कहना है कि कपोस्ट खाद से पैदा किया हुआ गेहू केवल रासायनिक खाद पैदा किये हुए गेहू से करीब १७ प्रतिशत ज्यादा पोषक होता है। इसका कारण रासायनिक खाद मे विटामिन ए की कमी है। विटामिन ए के कारण मनुष्य तथा पशुओ की रोग-प्रतिबधक शक्ति बढती है।

ले० क० मेकरसनसाहब ने गेहू पर कुछ प्रयोग किये। परिणाम यह निकला कि जिन खेतो मे कोई भी खाद नही दी थी, उनकी उपज, जिनमे कंपोस्ट की खाद या रासायनिक खाद दी थी, उनसे कम हुई। किन्तु जिन खेतो मे रासायनिक खाद दी थी, उनसे पोषण-तत्व विटामिन की मात्रा ज्यादा थी।

शारीरिक वृद्धि-सम्बन्धी उनके नतीजे इस प्रकार रहे। यह प्रयोग बहत्तर दिन चला।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. साधारण अन्न | + | गेहू जिसमे रासायनिक खाद दी हो | ९२ प्र० वृद्धि |
| २. साधारण अन्न | + | बिना खाद गेहू | १०७ प्र० वृद्धि |
| ३. साधारण अन्न | + | कंपोस्ट खाद गेहू | ११४ प्र० वृद्धि |

जमीन की उर्वरा शक्ति कायम रखने के साधन हमारे देहातो मे कई है, किन्तु अनेक कारणो से हम उनका पूरा उपयोग नही कर पाते। पशुओ का मूत्र करीब-करीब सब बर्बाद ही होता है। यदि उसे उचित पद्धति से एकत्र किया जाय, तो एक जोडा बैल के मूत्र से करीब एक एकड भूमि को खाद दिया जा सकता है और इसी प्रकार गाय और दूसरे पशुओ के मूत्र का भी उपयोग हो तो करीब ७.५ करोड एकड भूमि को खाद दिया जा सकता है।

इसके उपरात पशुओ से बहुत बडे प्रमाण मे गोबर मिलता है। किन्तु केवल ईधन के लिए ही भारतीय ग्रामीण उसमे से करीब आधे को जला देता है। हा, इससे उसके ईधन का प्रश्न एक बडी हद तक हल हो जाता है, किन्तु उसकी जमीन को तो भूखे ही रहना पडता है और परिणाम होता है फसल की कमी। ईधन की दृष्टि से एक टन सूखी गोबर करीब आधा टन पत्थर के कोयले के बराबर होती है। इस हिसाब से गोबर को जलने से बचाने के लिए कितना कोयला लाना होगा और क्या किसान वह खरीद सकेगा? डॉक्टर भाभा के हिसाब के अनुसार जितनी जलशक्ति देश मे खर्च होती है, उसमे से करीब तीन

चौथाई तो गोवर जलाने से आती है ।

इस प्रश्न का गहराई से अध्ययन किया गया और अनेक प्रयोग किये गए । अब गोवर-गैस प्लाट का आविष्कार हुआ है । इस पद्धति से सब प्रकार के मलमूत्र तथा कूडे-कर्कट का उपयोग कर अच्छी खाद बनाई जाती है । इतना ही नही, उससे पैदा होनेवाली गैस का उपयोग ईंधन के तौर पर अच्छा हो सकता है । सफाई रखने मे मदद मिलती है । श्रम की बचत होती है । यदि देहातो मे विकेन्द्रित पद्धति से गोवर-गैस प्लाटों की रचना की जाय तो खाद तथा ईंधन का प्रश्न हल करने मे काफी मदद मिलेगी ।

शहरो मे होनेवाले मलमूत्र आदि का सुएज-प्रथा से उपयोग किया जाय तो जमीन को खाद का पानी मिलेगा और कुछ व्यवसायो के लिए शक्ति भी प्राप्त होगी । उसी प्रकार शहरो को गदगी तथा रोगो से बचाया जा सकेगा । पशु हमे शक्ति के लिए बैल देते है । इतना ही नही, उपयोगी गैस देकर ईंधन का प्रश्न भी हल करते है ।

पशुओ के खानपान-देखभाल आदि का खाद के गुणो पर असर पडता है । अच्छी तरह से पूरा पौष्टिक खाना दिया जाय और सब खाद की पूरी व्यवस्था की जाय तो खाद ज्यादा काम की बनेगी और जब किसान खाद की कद्र करने लगेगा तब वह पशुओ के कल्याण का विचार करेगा, क्योकि उसका कल्याण पशुओ के कल्याण से बहुत जुडा हुआ है । आज भी देश मे कई भाग ऐसे हैं जहा केवल खाद के लिए पशु पाले जाते हैं, किन्तु न तो उनके खान-पान की ठीक व्यवस्था होती है, न खाद का सग्रह होता है । परिणास्वरूप बडी सख्या मे पशु पालते हुए भी खाद की कमी होती है और पशुओ की अवहेलना होती है, वह अलग ।

पौधो को अपना जीवन चलाने के लिए अन्न की जरूरत होती है और उसे वे जमीन तथा हवा से लेते है । साधारणतया जब किसी चीज की कमी होती है, तो उसकी पूर्ति रासायनिक खाद देकर की जा सकती है । किन्तु एक बात ध्यान मे रखनी होगी कि यह कार्य विशेषज्ञो

द्वारा जाच कराकर और उसकी मात्रा निश्चित करने पर ही किया जा सकता है। बीमारियो मे कभी-कभी दवा देने की आवश्यकता पडती है, किन्तु दवा देने का काम किसी कुशल डाक्टर या वैद्य के हाथ ही मे होना चाहिए। गफलत या अज्ञानता के कारण नुकसान होने की सभावना रहती है। इसलिए खाद का उपयोग करने के पहले विशेषज्ञो की सलाह लेना आवश्यक होगा। किन्तु देश मे ऐसे विशेषज्ञो की बहुत कमी है। रासायनिक खाद के प्रति काफी उत्साह फैलाया गया है। इस कारण सावधानी बरतनी होगी। इस प्रकार विचार करने पर हम इस निर्णय पर पहुचते है कि सामान्यत सेन्द्रिय खादो का ही प्रचार करना चाहिए। सेन्द्रिय खाद या कपोस्ट मे पौधो की जरूरत के सब तत्व होते है, किन्तु यदि किसी कारण कुछ त्रुटि पैदा हो जाय तो रासायनिक खाद का प्रयोग करना चाहिए। रासायनिक खाद को दवा मानना चाहिए, न कि अन्न। वैसे गाधीजी तो दवा के भी विरोधी थे और अपना सब इलाज प्राकृतिक चिकित्सा से ही करते थे।

मनुष्य तन्दुरुस्त रहने के लिए ही अन्न लेता है और वह यह अच्छी तरह से जानता है कि तन्दुरुस्ती, पशु तथा वनस्पति से मिल सकती है। यदि पशु तथा वनस्पति तन्दुरुस्त न हो, तो उसका असर स्वास्थ्य पर पडता है। न्यूजीलैण्ड का एक उदाहरण है। वहा के किसान रासायनिक खाद का काफी उपयोग करते है और डा० चेकमन का अनुभव हुआ कि इस प्रकार के अन्न के कारण कितने ही रोग, खासकर दात के रोग, बढते है। उन्होने साठ विद्यार्थियो तथा शिक्षको पर कुछ प्रयोग किये। उन्होने सेन्द्रिय खादो का उपयोग कर फल, सलाद, तरकारिया आदि उगाईं और इनका उपयोग विद्यार्थियो पर किया। परिणाम यह हुआ कि उनमे साधारण रोगो की कमी हो गई और दात ज्यादा मजबूत हुए। प्रोफेसर रोस्ट ने अनुभव किया कि पोटेशियम के ज्यादा होने से थ्रोम्बोसिस और गैग्रीन रोग बढते है। एक जर्मन विशेषज्ञ का मत है कि पेट तथा आतो की बीमारियो को सेन्द्रिय खाद से पैदा किये गए

कच्चे अनाज से सरलता से दूर किया जा सकता है। सर अलबर्ट हवर्ड ने इम सम्वन्ध मे काफी प्रयोग किये हैं। जव वह इदौर मे थे तव मुह और पगखुरे की वीमारी काफी फैली थी। किन्तु उन्होने फार्म के वैलो को कपोस्ट की मदद से पैदा किये हुए घास-चारे पर रखा। किसी प्रकार की दवा आदि की व्यवस्था नही की। फिर भी उनके वैल स्वस्थ रहे और किसी प्रकार की हानि नही उठानी पडी। उन्होने अपनी किताव 'एग्रीकल्चर टेस्टामेन्ट' मे कितने ही उदाहरण देकर बताया है कि यदि फसले नैसर्गिक पद्धति से पैदा की जाय, जमीन को स्वच्छ रखा जाय तो रोगो से वचत हो जाती है। किसी प्रकार की औपधि छिडकने की जरूरत नही पडती।

वेलफ्रेड दुक्ड ने अपने वगीचे मे कभी भी रासायनिक खादो का उपयोग नही किया और न वीमारी से वचाने के लिए दवा छिडकी। फिर भी वह काफी सफल रहे। इन वातो से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वस्थ अन्न के लिए फसलो को नैसर्गिक पद्धति से ही खाद देना चाहिए और सफाई तथा शुद्धता का उचित व्यवहार करना चाहिए। इससे मनुष्य तथा पशुओ का स्वास्थ्य निर्दोष रखने मे मदद होगी और कीडे-मकोडे मारने के लिए हिसा नही करनी पडेगी। यदि वे पैदा ही नही हो, तो उन्हे मारने का प्रश्न ही नही उठता। जमीन मे तथा शरीर मे असख्य जीवाणु उपयोगी कीडे-मकोडे है और वे निरुपयोगी जीवाणु तथा कीडे-मकोडो को वढने से रोकते है। जव हम दवा का उपयोग करते है तब अच्छे, उपयोगी कीडे-मकोडे तथा जीवाणु मर जाते है। शरीर मे रोग निवारक शक्ति कम हो जाती है और रोगो का प्रादुर्भाव सहन करना पडता है।

देश मे अन्न की कमी है और वह दिन-व-दिन वढती जाती है, इसलिए प्रयत्न हो रहा है कि ज्यादा-से-ज्यादा अन्न उगाया जाय और उसके लिए रासायनिक खादो का तथा गहरी जमीन जोतने के प्रयत्न हो रहे है। प्रो० आईस्टीन ने पाश्चात्य देश के किसानो को वताया है कि इस

प्रकार खेती करना अदूरदर्शिता का द्योतक है। यदि इसी प्रकार हम गहरी जुताई के पीछे पडे और रासायनिक खादो का उपयोग बढाते रहे तो कुछ साल तो हमे राहत मिलेगी, लेकिन इतनी हानि पैदा हो जायगी कि उससे बचना असभव हो जायगा। इसलिए हम समय पर ही चेते और देश के लिए सतुलित योजना बनाये।

रासायनिक खाद और सेन्द्रिय खाद की प्रगति-सबधी चौथी पचवर्षीय योजना मे यह सुझाया गया है कि :

प्रति एकड खपत के हिसाब से रासायनिक खाद का उपयोग दुनिया के हिसाब से केवल एक शताश ही आता है। तीसरी योजना मे अनुमान था कि नाईट्रोजन की खपत ६ लाख टन होगी, फास्फेट १ ५ लाख टन और पोटाश ६० हजार टन। चौथी पचवर्षीय योजना मे उसे २० लाख टन, १०लाख टन, और ३५ लाख टन करने का इरादा है। कारण उत्पादन बढाने मे इसकी खास जरूरत रहेगी। वितरण-सबधी कार्य का विस्तार किया जायगा।

१९६५-६६ मे २ करोड १५ लाख एकड मे हरी खाद की फसल बोयी गई थी। उसे बढाकर ६ करोड ४० लाख एकड बनाना है।

स्थानीय साधन जैसे कि गोबर, कूडा-कचरा खाद आदि का ज्यादा उपयोग किया जायगा। गोमूत्र, हरी पत्तिया, जलकुभी, लालपोकी, मिट्टी आदि के उपयोग पर बल दिया जायगा। किसानो के उपयोग मे आ सके ऐसे गोबर-गैस प्लाट अब बन गये हैं। चौथी पचवर्षीय योजना मे ५,००० गोबर-गैस प्लाट बनाये जायगे और उनके लिए ५० कारखाने खोले जायगे। शहरी विभाग मे ५४ लाख टन कपोस्ट बनाया जायगा। सुएज फार्म का भी विकास किया जायगा और इनका लाभ किसानो को मिले, इसकी व्यवस्था की जायगी।

सात

# मृतपशु व्यवसाय

गाधीजी ने अनुभव किया कि गोसेवा-कार्य मे चर्म के व्यवसाय का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है जितना कि दूध-व्यवसाय का और इसलिए अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डल की स्थापना के बाद जब साबरमती-आश्रम मे गोरक्षा सम्बन्धी प्रयोग शुरू हुए तब गोशाला के साथ-साथ एक चर्मालय की भी स्थापना की गई। यह देखा गया कि गोसेवा के इस अग की काफी उपेक्षा की गई है और यह व्यवसाय केवल अज्ञानी हरिजनो के हाथ मे ही छोड दिया गया है। इस कारण देश को काफी आर्थिक हानि उठानी पडती है। चमडे के भाव वढ जाने पर चोरी-छिपे गाय का वध किया जाता है।

गोवध के कारणो की खोज करते हुए पता चला कि हिन्दुस्तान मे जो गोवध चल रहा है, उसमे से अधिकाश गौए चमडे के लिए ही मारी जाती है। कत्ल किया हुआ चमडा तुरन्त पकाने के लिए चला जाता है, कारण वह अच्छा मुलायम वन जाता हे और उसका मूल्य भी काफी अधिक मिलता है। लेकिन अपने-आप मरनेवाले पशु का चमडा तुरन्त पकाने के लिए नही ले जाया जा मकता। पहले उसे नमक लगाकर सुखा लिया जाता है। चमडा धूप मे सुखाया गया हो तो पकाने मे सडकर गल भी जाता है। पशु किसी-न-किसी बीमारी से, या अत्यधिक बूढा होकर, मरता है इस कारण भी उसका चमडा खराव हो जाता है। मरे हुए जानवर को घसीटकर ले जाने मे चमडा छिलकर फटता है खराव होता है। जानवरो की मृत्यु-सख्या वरसात मे अधिक होती

उस समय सुखाने का उचित प्रबध न होने के कारण उसे गीला ही नमक लगाकर अधिक दिनो तक रख छोडते हे। ऐसे अनेक कारणो से मृतपशु का चमडा खराब होता रहता है।

भारत मे पशु-सख्या बहुत ह, दुनिया की करीब १।५ अश। प्रति-वर्ष बीमारी या दूसरे कारणो से १० प्रतिशत से ज्यादा सख्या मे पशु मरते ह। ये पशु देहातो मे बिखरे होते हैं। इस कारण उनके शव का पूरा उपयोग नही हो सकता। बीमारी, घसीट, अयोग्य पद्धति से चमडा उतारना आदि कारणो से चमडे का बहुत बडा हिस्सा बर्बाद हो जाता है। इस विषय के विशेषज्ञो का मानना है कि देश मे प्रति वर्ष करीब ढाई करोड पशु मरते है और उनसे करीब ६७७ करोड पौंड यानी ४० करोड रु० की आमदनी हो सकती है। किन्तु यह काम व्यवस्थित नही होता। इस कारण भी २३ १६ करोड रु० का नुकसान होता है। इसका अर्थ हुआ कि देश के उत्पादन के राजस्व का करीब सवा अश। इतना सब होते हुए भी इस व्यवसाय की ओर अभीतक खास ध्यान नही दिया गया है।

दूसरी ओर चमडे की माग बढती जा रही है। चमडा मुलायम हो, इसका आग्रह रखा जाता हे और यह माना जाता है कि ऊची जाति के चमडे का उत्पादन करने के लिए पशु-हत्या लाजमी है। चमडे की वस्तुओ का निर्यात बढे, इसके प्रयत्न हो रहे है। कसाई-खानो को सुधार के नाम पर बढावा दिया जा रहा है। कुछ तरह की औषधियो के उत्पादन के लिए पशु-हत्या उपयोगी मानी जाने लगी है। चूकि ये सब व्यवसाय छोटे पैमाने पर नही हो सकते, इसलिए बडे कारखानो की स्थापना करने के प्रयत्न किये जा रहे है, ताकि विज्ञान का सहारा मिले और व्यापार आसानी से चल सके। इसका एक परिणाम यह होता है कि देहातो से छटकर अच्छे प्राणी शहरो मे आते है और उनका कत्ल होता है। कत्ल के बाद चमडा कमाना तथा व्यवस्थित उपयोग करना यह भी बडे कारखानो मे सुविधाजनक माना जाने लगा है और इसका असर

एक महत्वपूर्ण ग्रामोद्योग पर होता है।

इन सब बातो का अध्ययन करने के बाद साबरमती-आश्रम के पास चर्मालय खोला गया और आग्रह रखा कि इस चर्मालय मे मृत पशुओ के चमडे का ही उपयोग हो। सुधरे हुए चर्म कमाने के उपायो से अच्छी वस्तुए तैयार होने लगी। साधारण जनता के काम मे आनेवाले जूते आदि के उत्पादन की तरफ ध्यान दिया गया। कुछ शौकीन चीजे भी बनने लगी, किन्तु बहुत कम। इस व्यवसाय को देहात मे फैलाकर देहातियो के लिए मोट, वर्ती, देहाती जूते आदि बनाने को प्रोत्साहन देने का विचार था। कलकत्ता मे श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त ने इस बारे मे कई प्रयोग किये और यह सिद्ध कर दिया कि विज्ञान का उपयोग करने से बहुत-सी अच्छी चीजे बनाई जा सकती है। वर्धा मे चर्मालय की शुरुआत हुई, उसमे चर्म के साथ-साथ मृत पशु के दूसरे हिस्सो का भी उपयोग किया जाने लगा। बम्बई के नजदीक बोरीवली कोरा केन्द्र मे काफी प्रयोग हुए। अनुभव हुआ कि मृत पशुओ से देश को काफी लाभ हो सकता है और एक नया व्यवसाय विकसित किया जा सकता है। ताजे आकडो के अनुसार एक मृत पशु से इस प्रकार आमदनी की जा सकती है

अन्य वस्तुए ग्रनडायजेस्टेड

| सूखा गोवर | १०० कि० | ७० कि० | ५० कि० | २५ कि० |
|---|---|---|---|---|

इसके अलावा कितने ही नये प्रयोग किये जा रहे है। इस मद मे देश की सम्पत्ति वढने की काफी गुजाइश है। यदि व्यवस्थित रूप से विकसित किया जाय, तो चमडे के लिए पशुवध करने की खास जरूरत नही रहेगी।

क्या हमने कभी सोचा है कि मुलायम चमडे के जूते, चप्पल, कीमती चीजे रखने के वक्से आदि का जो उपयोग हम करते है, साबुन आदि के लिए चर्वी का उपयोग हम करते हे, उनके पीछे वध की एक भयानक कहानी हे। यह वध हमेशा अच्छे हृष्ट-पुष्ट पशुओ का हो, इसका आग्रह रखा जाता है और इस वध का पशुपालन पर वहुत बुरा असर पडता है। हमारे अनुभव हमे यह बताते हे कि यदि मृत पशु का व्यवसाय शास्त्रीय ढग से वढाया जाय तो हम पशु-हत्या से बच सकेगे।

मृतपशु मुख्यत तीन जगहो पर मिलते है

१. **बडी पशु-बस्ती**—दूध के व्यवसाय को बढावा देने के लिए बम्बई की आरे जैसी वस्तिया वसाने के प्रयास हो रहे है। वहा पलनेवाले पशु हमेशा अच्छी स्थिति मे होते है और ऐसी वस्तियो मे मृत पशुओ से पूरा लाभ उठाया जाय, तो ऊची जाति के पशु मिलने का एक स्थान खडा किया जा सकता है। कोरा केन्द्र मे आरे कालोनी से प्रतिवर्ष १६०० वडे मृत पशु तथा १५००० छोटे वछडो के शव प्राप्त होते है और उनसे निम्नलिखित चीजे बनाई जाती है

| | | |
|---|---|---|
| १ | टेलो | ५५,००० पौ० |
| २ | सोप | १,००० केसेस |
| ३ | मास का खाद (१२ प्रतिशत नाइट्रोजन) | १४० टन |
| ४ | मुर्गियो के लिए खाद्य | १० टन |
| ५ | हड्डी का खाद | ८० टन |
| ६ | हड्डी का चूर्ण | १० टन |

गोसदन

| क्रम | भैंस |  | गाय |  |  |  |
|---|---|---|---|---|---|---|
|  | मात्रा | कीमत | मात्रा | कीमत | प्रोसिडीग कास्ट | आय |
| १ चमडा | १ | २५ ०० | १ | १२ ०० |  | १२ ०० |
| २ हड्डी | २५-कि० | ७ ०० | ३० कि० | ६ ०० | ४ ५० | २७ ०० |
| ३ मास खाद सूखा | १० कि० | ४ ०० | ६ ,, | २ २५ | ० ६० | ४ ५० |
| ४ चर्बी | २ कि० | ६ ०० | १ ,, |  |  |  |
| ५ सीग-खुर |  | ० २५ |  | ० २५ |  | ० २५ |
| ६ नीट फुट आयल क्रूड | १०० ग्रा० | १ ०० | १०० ग्रा० | १ ०० | ० ५० | २ ५० |
| ७ वाल | ३० ग्रा० | ० १० | २० ग्रा० | ० १० |  |  |
| ८ कपोस्ट खाद (गाय) | ५० कि० | २ ०० | २५ कि० | १ ०० | ४ २० | ६ ०० |
|  |  | ४५ ३५ |  | २२ ६० | ६ ८० | ५५ २५ |
|  |  |  |  |  |  | ६ ८० |
|  |  |  |  |  |  | ४५ ४५ |

## पशु गोबर से औसत आमदनी

सूखा गोबर प्रतिदिन २ कि० (१० से १२ कि०) ३०दिन=६० कि० =७०० कि० प्रतिवर्ष ।

यदि गोबर गैस का उपयोग किया जाय तो ७० रु० प्रति टन के हिसाब से ४९ रु० की आमदनी होगी । यदि उसमे पोटाश तथा नाइट्रोजन मिलाया जाय तो आमदनी २५० प्रति टन होगी । इसमे से फर्टिलाइजर, रासायनिक खाद, मजदूरी आदि का खर्च १४० रु० कम करना होगा । इस हिसाव से कुल आमदनी ११० रु० प्रति टन होगी । इसमे मिथिन गैस का खर्च समावेश नही किया गया है ।

मृत पशु मिलने की तीसरी जगह है भारत मे बिखरे हुए अनेक ग्राम । देहातो मे पशुपालक घूमते-फिरते है, उससे इन मृत पशुओ का समय पर मिलना कठिन हो जाता हे । उन्हे जहा वे मरते है वहा से मुख्य स्थान पर लाने मे खर्च भी वढता है, चमडा भी विगडता है, पशु-पक्षियो से हानि भी होती है, इस कारण यह चमडा हल्के दर्जे का होता है और शरीर के दूसरे अगो का उपयोग खाद के लिए ही हो सकता है । किन्तु सख्या मे ऐसे मृत पशुओ की तादाद वहुत बडी है । इनका उपयोग करने से देहातियो की ठीक-ठीक ग्रामदनी हो सकती है और उनके काम मे आनेवाली साधारण वस्तुओ के लिए चमडा भी मिल सकता है । कठिनाई केवल व्यवस्था करने की है । यदि यह काम ग्राम-पचायत उठा ले तो आसानी होगी, देहातियो को आराम मिलेगा, गोसेवको के लिए सेवा का एक मापदण्ड पूरा होगा ।

इस दिशा मे उन्नति हो, इसलिए खादी ग्रामोद्योग सघ की इस योजना मे तकनीकी तथा आर्थिक मदद की व्यवस्था है । इससे लाभ उठाया जा सकता है ।

मृत शरीर का पूरा उपयोग करने से पशु-वध पर अकुश रहेगा । इतना ही नही, पशुओ की देखभाल की तरफ भी उचित ध्यान जायगा और पशु-कल्याण मे मदद मिलेगी ।

## पशु-सवर्धन

सवर्धन का उद्देश्य प्राणीजन्य अन्न की बढोतरी करना और खेती के लिए बैल पैदा करना है। और इस दृष्टि से देखते हुए यह लगता है कि देश मे दूध की कमी तो है ही और बैल भी ज्यादा ताकतवर न होने के कारण उनसे खेती का काम आसानी से नही हो सकता। १९६१ की पशु-गणना के अनुसार भारत मे प्रजोत्पादन योग्य ५ करोड गाये और करीब २ करोड भैस है। फिर भी दूध की मात्रा बहुत कम है। इसी प्रकार बैलो की सख्या करीब ७ करोड और भैसो की सख्या करीब ७० लाख होते हुए भी कितने ही प्रातो मे खेती तथा वाहन के लिए बैलो की कमी पडती है और यह माना गया है कि बैल हल्के दर्जे के होने के कारण खेती का काम व्यवस्थित और समय पर पूरा नही किया जा सकता और इस कारण उत्पादन कम होता है। अनुमान लगाया जा सकता है कि आज के ही बैलो की देखभाल ठीक हो, उनसे व्यवस्थित काम लिया जाय, तो उनकी कार्यक्षमता करीब दुगुनी हो सकती है।

ऐसा कहा जाता है कि हमारे पशुओ का करीब तीन-चौथाई हिस्सा किसी विशेष जाति का नहीं है और करीब १० प्रतिशत पशु बोझरूप माने जाते है। इन आकडो के बारे मे मतभेद हो सकता है, किन्तु एक बात निर्विवाद है कि हमे अपने पशुओ का स्तर बढाना ही होगा और उसके लिए काफी कुछ करना है। समय-समय पर गोदुग्ध प्रतियोगिता की जाती है। लेकिन गाय का औसत दूध और प्रतियोगिता मे शरीक होनेवाले दूध मे काफी फर्क है।

कुछ लोग मानते है कि पशुओ की इस अवनति का कारण यह है कि देश मे निम्न श्रेणी के पशु बहुत ज्यादा है और आज की परिस्थिति मे उनको योग्य रीति से पालने के साधन-अन्न देश मे नही है। जितना भी पशु खाद्य है उससे केवल तीन-चौथाई पशु ही पाले जा सकते है, एक-चौथाई पशुओ के लिए अन्न नही है। जबतक ऐसा होता रहेगा तबतक विकास कार्य मे बाधा पडती रहेगी और चूकि पशु-सख्या कम

मिल सकी। गाधीजी मानते थे कि व्यवस्थित रूप से सयोजन करने मे यह योजना स्वावलम्बी बन सकेगी और जो भी कमी रहेगी, उसकी पूर्ति जनता की ओर से दान आदि देकर की जायगी। किन्तु अनुभव यह हुआ कि गोसदन सरकार के अनुदान की तरफ देखने लगे। अनुदान बढे इसपर ध्यान देने लगे, मृत पशु तथा खाद आदि से आमदनी बढाने का प्रयत्न किया गया। खर्च पर अकुश कम रहा। इन कारणो से राज्यो मे उत्साह नही रहा। गोसदन योजना सार्वजनिक सस्था ही चलाए, विज्ञान का पूरा उपयोग करे, व्यवहार-कुशलता से कार्य-भार चलाये तो गोरक्षा की दृष्टि से यह एक उपयुक्त काम हो सकता है और अधिक सख्या तथा अनुत्पादक पशुओ की समस्या हल करने मे मदद मिल सकती है। गोवध-बदी पर इसका काफी असर होगा।

१९६०-६१ तक कुल ६१ गोसदन खुले। तीसरी पचवर्षीय योजना मे २३ खुलने थे, पर १९६४ तक कुल ८ ही खुल सके। चौथी पचवर्षीय योजना मे इस योजना को कुछ खास महत्व दिया जा रहा है, ऐसा नही लगता। अनुपयोगी पशुओ का प्रजनन रोकने के लिए नर पशुओ को बधिया करने की योजना थी। इस सबध मे आन्दोलन चलाने की चर्चा हुई थी, किन्तु खास प्रगति हुई है, ऐसा नही लगता। मादा पशुओ को बध्या करने का प्रश्न तो अभी प्रयोगावस्था मे ही है।

पशु-सवर्धन-सबधी एक नीति बना ली गई है। भारत मे आज करीब २८ जाति की गाये है, किन्तु देश की पशु-सख्या का करीब एक चौथाई हिस्सा ही इनमे आता है, बाकी पशु खास किसी जाति के नही है, इसलिए अब प्रयत्न किया जा रहा है कि जाति मे शुद्धता आये। इतना ही नही जातियो की सख्या भी कम की जाय। दूध के लिए भैस और बैल के लिए गाय इस तरह दो प्रकार के प्राणी पालना अयोग्य माना गया है और प्रयत्न किये जा रहे है कि एक ही प्राणी से दूध तथा बैल मिल सके। इससे पशु-सख्या पर अकुश हो सकेगा। आज की हमारी पशु नस्ले तीन विभागो मे बाटी जा सकती है—१ केवल बैरा पैदा

सोचा गया है और अभीतक तो इस कार्य को पर्वतीय इलाको, ज्यादा बर्षावाले इलाको तथा शहरो के आस-पास के क्षेत्रो तक ही सीमित रखा है। मानी हुई जातियो पर यह प्रयोग फिलहाल नही किया जायगा। अनुमान है कि उसके कारण दूध की मात्रा बढेगी और बैल की शक्ति मे कुछ खास कमी नही होगी। नस्ल-सुधार—पशु-सुधार के लिए ऊची जाति के मा-बाप का होना आवश्यक है। यह बात बहुत पुराने समय से मान ली गई है और चूकि ऊचे गुणवाले साडो से सुधार जल्दी होता है, इसलिए साड रखने की प्रथा शुरु हुई है। पितरो के नाम साड छोडने की प्रथा चली। आगे चलकर सरकार या धर्मादाय की सस्थाओ ने यह कार्य हाथ मे लिया। किन्तु बिखरा हुआ काम होने के कारण समाज पर इसका ज्यादा प्रभाव नही पडा और न यह काम योजनाबद्ध हुआ। इसलिए सगठित रूप से और प्रगतिशील क्षेत्रो मे काम हो, इस उद्देश्य की ग्राम योजना बनी। इस योजना का मूल हेतु साड की कमी पूरी करना था। साधारण तौर से देश मे प्रजनन योग्य सात करोड गाय-भैस है और यदि इनके लिए साड की व्यवस्था करनी हो तो सात लाख साड पालने होगे। इतनी बडी सख्या मे साड पालना बोझरूप होगा। इसलिए कृत्रिम गर्भाधान की पद्धति शुरु की गई है। चुने हुए स्थानो पर तथा 'की विलेज' मे कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र स्थापित किये गए है और अभीतक के अनुभव से पता चलता है कि ठीक तौर से काम चले, तो करीब एक हजार मादाओ के लिए एक साड उपयुक्त होगा। कई साड एक जगह पालकर उनका वीर्य एकत्र किया जा सकता है। इस तरह की 'सीमेन बैक' करीब १९ स्थापित हो चुकी है।

ऊची जाति के पशु प्राप्त हो, इसलिए सरकार की ओर से करीब १६० सरकारी फार्म खोले गये है। इन फार्मो पर करीब १७ हजार गाये और ६ हजार भैसे पाली जाती है और सालाना दो हजार गाय के और ६०० भैस के साड प्राप्त होते है।

देश के विभाजन के बाद दूध देनेवाली कई नस्ले पाकिस्तान के

हिस्से मे गई। इन नस्लो के जो कुछ पशु बचे थे, उनके सवर्धन के लिए ६ बडे फार्म खोलने की योजना है। इन फार्मो पर लालसिंधी, थरपारकर गाये और मुर्रा भैंसे रखी जायगी। परदेशी जाति की गायो की वृद्धि के लिए दो फार्म खुले हे। इनसे सालाना करीब ६० साड प्राप्त हो सकेगे। इन फार्मो के उपरात गोशालाओ का उपयोग भी साडो के उत्पादन के लिए किया जा रहा है। १९६०-६१ तक २५५ गोशालाओ ने योजना ली थी और तीसरी पचवर्षीय योजना मे १६८ नई लेने की योजना थी। इन साडो के लिए गोशालाओ का बहुत महत्वपूर्ण योग रहा है। 'की विलेज' योजना से भी साड प्राप्त होगे। सन् १९६०-६१ तक करीब ५२५ की ग्राम ब्लाक चालू हो गये थे और १५० नये होने की सभावना थी। सर्व-साधारण कार्य के लिए इन सब योजनाओ से ठीक मात्रा मे साड प्राप्त होने की सभावना पैदा हो गई, किन्तु उच्च कोटि के परखे हुए साड की ही आवश्यकता रहेगी, इसलिए साड परखने के केन्द्रो की व्यवस्था की जा रही है और अनुभव के बाद उसे बढाने को चेष्टा होगी। देहातो मे तथा सस्थाओ मे ऊची जाति के बछडो के सवर्धन को प्रोत्साहन मिले, इसलिए अनुदान देने की व्यवस्था की गई है। किन्तु सार्वजनिक सस्थाओ मे तथा पशुपालको की यह शिकायत रही है कि उनके यहा तैयार किये गए साड समय पर उठाये नही जाते और इस कारण उन्हे नुकसान सहन करना पडता है। इतने बडे तत्र मे साड की माग व्यवस्थित हो और कौन-सा साड कहा भेजना, इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है। अब यह निर्णय किया गया है कि साड-पोषण फार्म खोले जाय। इन फार्मो पर साड एकत्र कर उन्हे पाला-पोसा जायगा और समय आने पर उन्हे बाट दिया जायगा। तीसरी पचवर्षीय योजना मे इस तरह के १३ फार्म खोलने की योजना थी, लेकिन ६१-६४ तक केवल ६ ही खोले गये है।

**पशुपोषण** पशु-पोषण की सुविधाए बढाये बगैर नस्ल-सुधार का कार्य प्रगति नही कर सकेगा। पशुओ को चारा-दाना उनके काम की

मात्रा मे दिया जाय और वह सतुलित हो, इसका महत्व पहचाना जाने लगा है। दाने की दृष्टि से सतुलित आहार देने मे सुविधा हो, इसलिए 'फीड कपाऊडिग फैक्ट्रीज' खोली जा रही है। इन कारखानो मे सस्ता तथा पौष्टिक खाद्य तैयार किया जाता है, जिससे पशु-पालक उसको सीधे खिला सके। किन्तु यदि इन कारखानो पर ठीक से अकुश न रहा तो वे गरीब पशुपालको को लूटने के साधन वन जायगे। वडे कारखाने बनाने के वजाय यदि अनेक छोटे-छोटे कारखाने सहकारी ढग पर वनाये जाय तो स्थानिक उत्पादन का उपयोग होगा और पशु-पालक जान सकेगे कि वे अपने पशुओ को क्या खिलाते है। माल की शुद्धता तथा भाव पर नियत्रण रहेगा।

चरागाहो के सुधार करने की काफी आवश्यकता दिखाई देती हे। इसलिए चरागाह सुधारने का काम राज्य सरकारो ने उठाया है। उसके लिए कर्ज तथा अनुदान की व्यवस्था की गई है। ज्यादा उत्पादन देने-वाले पशुओ के लिए पौष्टिक चारे का उत्पादन करना महत्व पकड रहा है। चारे की उत्पादन-पद्धतियो का अनुभव प्राप्त हो, चारे के वीज मिल सके, कुछ चारे का सग्रह भी हो सके, इसलिए राज्यो मे फीडर फार्म स्थापित किये जा रहे है। इस प्रकार से प्राप्त किये हुए अनुभव, वीज आदि प्रथम सघन क्षेत्रो तथा 'की विलेज' ब्लाको मे काम मे लाये जायगे और उसके बाद प्रगतिशील किसानो मे वाटे जायगे। जगलात महकमा घास-उत्पादन मे काफी सहायता दे सकता हे। घास की मात्रा वढे और सुधार हो, इसके प्रयोग करने की व्यवस्था की गई है। जगलो मे से घास काटकर उनकी गठरी बाधी जाती है और पशु-पोषण के लिए उन्हे वाजिव दाम पर वेचने की व्यवस्था की जाती है। दुर्भिक्ष के समय घास काम आ सके, इसलिए 'फॉडर बैक्स' की स्थापना की जा रही है। खेती की पद्धति मे भीकुछ सुधार करना होगा। खेती की फसलो मे दूसरे उपज के साथ घास-चारा भी ज्यादा मिले, उसका प्रयत्न करना होगा। 'मुख्य फसलो के वीच समय मे चारे का उत्पादन वढाने का प्रयत्न

करना होगा। इस सब कार्यों के लिए चौथी पचवर्षीय योजना मे एक खासी रकम खर्च करने की योजना है।

नस्ल-सुधार, पशु-पोषण तथा अन्य कामो में पशुपालकों की दिलचस्पी बढ़े, इसलिए अनुदान की व्यवस्था की गई है। किन्तु देखा गया है कि उससे पूरा लाभ नही मिलता। अनुदान के बजाय उत्पादक को उसके उत्पादन के अनुपात मे मदद मिले, यह ज्यादा लाभदायी होगा।

बीमारी तथा महामारी के कारण कितने ही पशु मर जाते है या बर्बाद हो जाते हैं। पशुपालक को इससे काफी हानि उठानी पडती है। उन्हे समय पर सहायता मिले, इसलिए पशु-चिकित्सालयों की स्थापना की गई। पशुओं के सामान्य रोगों के लिए इलाज किये जाने लगे। महामारी से पशुओं का बचाव हो, इसलिए टीके लगाने की भी व्यवस्था की गई है। महामारी नही फैले, इसलिए क्वारटाइन स्टेशन की भी स्थापना हो रही है। पशु मेलो मे बडी सख्या मे पशु एकत्र होते हैं और वहा रोग पैदा होते हैं। उनपर नियत्रण की व्यवस्था की गई है। पशु-चिकित्सालय के कार्य मे मदद हो, इसलिए अनेक छोटे-छोटे अस्पताल भी कायम किये गए हैं। यह लक्ष्य रखा गया है कि दस गाव मे एक स्टॉकमैन तो हो ही और एक ब्लाक मे एक पशु-चिकित्सक। धीरे-धीरे यह

कठिन-सा लगता है और पशु-स्वास्थ्य केवल दवा देने से ही ठीक हो सकेगा, इस मान्यता मे भूल भी दिखाई देती है। पशुपालक को छोटी-मोटी बीमारियो के समय अपने पशु की देखभाल करना सीखना होगा और कुछ हद तक स्वावलवी होना होगा।

गाधीजी तो दवा देने के पक्ष मे नहीं थे। वह तो प्राकृतिक चिकित्सा या निसर्गोपचार को ही मानते थे। पशुओ को मुख्यत निसर्ग के साथ रहना पडता है और उनको तो उचित खानपान और देखभाल आदि से ही सुरक्षित रखा जा सकता है। यदि ठीक तौर से देखभाल की गई तो कितनी ही झझटो से पशुपालक बच जायगा और उस प्रमाण मे सरकार का बोझ भी हल्का होगा, पशु स्वस्थ रहेगे। यह कार्य पशुपालक तथा सरकारी कर्मचारी दोनो के सहयोग से सफल हो सकता है।

इतने बडे पैमाने पर काम करने के लिए विभिन्न श्रेणी के कार्य-कर्ताओ की जरूरत रहती है और उन्हे प्रशिक्षण देना महत्वपूर्ण हो जाता है। देहातो मे कार्य करनेवाले स्टॉकमैन कार्यकर्ताओ का एक वर्ग है। उनके प्रशिक्षण की राज्य व्यवस्था करता है। इतने सालो के अनुभव से यह लगता है कि पशु-सवर्धन मे इन कार्यकर्ताओ का अच्छा योग रहा है।

पशुपालन-सबधी उच्च स्तर का शिक्षण देने के लिए वेटरनेरी और एनीमल हस्बेंडरी हॉस्पिटल के स्नातको के लिए करीब १७ वेटरनेरी कालेज खोले गये है और उनमे प्रतिवर्ष आठ सौ से एक हजार तक स्नातक तैयार होते है। कृषि-विद्यालयो मे भी पशुपालन-सबधी प्रशि-क्षण देने की योजना है। १९६१ तक इस प्रकार के तिरेपन कालेज थे और उनसे प्रतिवर्ष दो सौ स्नातक बाहर निकलते है। स्नातकोत्तर प्रशि-क्षण की भी व्यवस्था हो रही है। इतना ही नही, दुग्ध-व्यवसाय-सबधी प्रशिक्षण देने के लिए कुछ विद्यालय खोले गये है और उनमे डिप्लोमा, स्नातक तथा स्नातकोत्तर प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई है। किन्तु अनुभव से यह लगता है कि अधिकाश कार्यकर्ता सरकारी नौकरी की

तरफ झुकते है । स्वतन्त्र रूप से व्यवसाय करने की ओर उनका लक्ष्य नही होता और वे अपना भविष्य इसमे नही देखते । शिक्षण-पद्धति भी कुछ ऐसी है कि कार्यकर्त्ता किसी प्रकार की जोखिम उठाने के लिए तैयार नही होता और वडे उद्योगपति उनके विश्वास पर नया काम खोलने को तैयार नही होते । वे मानते है कि अनुभव-ज्ञान न होने के कारण प्रत्यक्ष कार्य मे विश्वास नही रखा जा सकता ।

साबरमती-आश्रम मे वडे गोशाला चर्मालय का काम हुआ तबसे गाधीजी ने प्रशिक्षण पर जोर दिया । वह साबरमती तथा सेवाग्राम की गोशाला के विद्यार्थियो के सम्पर्क मे रहते थे और मार्गदर्शन करते थे । सेवाग्राम मे वेसिक प्रशिक्षण पद्धति की चर्चा करते समय उन्होने गोप-विद्यालय के आगे एक अनुभव रखा था । विद्यार्थियो का शिक्षण-काल चार हिस्सो मे बाटा जाय । पहले सत्र मे वे गोशाला, खेती आदि का सम्पूर्ण कार्य अपने हाथ से करे और उन्हे उनके काम के प्रमाण मे वेतन दिया जाय । हाथ मे कुशलता आने पर उन्हे मुकादम बनाकर दूसरे नये विद्यार्थियो या स्थानिक मजदूरो से काम लेना सिखाया जाय । उसके बाद उन्हे स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग विभागो का काम सौपा जाय और आखिर मे दूसरी सस्थाए देखकर कुछ प्रयोग करे, ऐसी व्यवस्था की जाय । व्यावहारिक शिक्षण के साथ उन्हे उस विषय का शास्त्रीय ज्ञान हो सके, इसका प्रबध किया जाना चाहिए और वे स्वतन्त्र रूप से विचार कर सके, इसकी भी व्यवस्था हो । गाधीजी का आग्रह था कि विद्यार्थियो को स्वावलबी होना ही चाहिए । उनके खर्च की पूरी जिम्मेवरी विद्यालय या गोशाला को उठानी चाहिए । इससे विद्यार्थी तथा प्रबधक दोनो ही सतर्क रहेगे । इस ढग का विद्यालय करीब दो साल चला । आशाजनक प्रगति हुई, किन्तु जब सरकारी स्टाकमैन, स्टाक सुपरवाइजर की कक्षाए सेवाग्राम मे खोली गई तब नये विद्यार्थियो पर यह प्रयोग करना असभव-सा हो गया । सरकारी शिक्षक इस पद्धति को नही मानते थे । उन्हे तो एक खास ढाचे मे प्रशिक्षण देना था । यह देखा गया कि दो प्रकार के

विद्यालय चल नही सकने थे। इसलिए गाधीजी का प्रयोग अधूरा ही रहा। जो कुछ अनुभव आया उससे लगता है कि इस दिशा मे सोचे बगैर कार्य पूर्णतया सफल नही होगा। हमारी शिक्षण-पद्धति मे एक त्रुटि दिखाई देती हे। शिक्षण-क्रम पूरा करने पर कार्यकर्ता अपने कार्य मे लग जाते हे, देहातो मे ज्ञान-सवर्धन के लिए खास सुविधा नही होती, दूसरी ओर शिक्षको का प्रशिक्षित विद्यार्थियो के साथ सबध नही रहता। विज्ञान प्रगति कर रहा है, नित नये प्रयोग होते है, इस सबका लाभ कार्यकर्त्ताओ को मिले, यह आवश्यक है। समय-समय पर कार्यकर्त्ताओ को एकत्र कर उनके लिए थोडे समय के कोर्स चलाने की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि सभव हो तो इन पाठ्यक्रमो का लाभ प्रगतिशील किसान को भी मिले, यह आवश्यक है, अर्थात् ये क्रम अनेक श्रेणी के होगे।

### 'की विलेज स्कीम'

कितने ही वर्षो से पशु-सवर्धन का कार्य अलग-अलग हिस्सो मे बटा था। कही साड दिये जाते थे, कही पशु-चिकित्सा की व्यवस्था थी। कितने ही दूसरे पशु-सवर्धनीय कार्य किये जाते थे, किन्तु उनका समन्वय न होने के कारण कुछ खास प्रगति नही होती थी। इसलिए यह सोचा गया कि पशुपालन-सबधी सब क्रियाए एक छोटे केन्द्र मे की जाय और जैसा-जैसा अनुभव मिले, उसका विस्तार किया जाय। 'की विलेज' का मूल उद्देश्य तो साड-प्राप्ति का था, किन्तु अनुभव के बाद उसमे कई परिवर्तन करने पडे। साडो का वितरण हुआ, उनके खान-पान की व्यवस्था की गई। पोषण-सबधी योजनाए ली गई। आगे चलकर 'की विलेज' मे होनेवाले उत्पादन को योग्य बाजार मिले, पशुओ के स्वास्थ्य की देखभाल हो, इत्यादि काम जोडे गये। इस प्रकार 'की विलेज' सेटर पशु-सुधार का केन्द्र बना। साडो की सख्या कम करने के लिए कृत्रिम गर्भाधान भी होने लगा। १९६०-६१ तक देश मे करीब चार सौ 'की विलेज' सेन्टर थे और तीसरी पचवर्षीय योजना मे ७९ नये खोलने की कल्पना थी। ११४ 'की विलेजो' का विस्तार किया गया और तीसरी

पचवर्षीय योजना मे ६४ नयो का प्रबध हुआ। 'की विलेज' को चौथी पचवर्षीय योजना मे व्यापक स्वरूप देने की कल्पना है और 'इन्टेसिव केट्ल डेवलपमेट प्रोजेक्ट' मे सवर्धनीय पशुओ की सख्या करीब एक लाख होती है जबकि 'की विलेज सेटर' का लक्ष्य करीब एक हजार का था। प्रोजेक्ट्स मे कृत्रिम गर्भाधान की योजना को बहुत महत्व दिया है। कुछ साड भी रखे जाते है। इसके साथ-साथ बडे प्रमाण मे वीर्य-सुधार, घास-चारे की खेती को प्रोत्साहन देना, 'फीड कपाऊडिग फैक्ट्री' खोलना, पशुओ को महामारी आदि से सरक्षण करना और प्रोजेक्ट मे उत्पन्न हुए दूध के लिए मार्केट देना मुख्य है। ज्यादातर यह प्रोजेक्ट किसी डेरी-यूनिट के साथ लगाये जाते है। पशु-सवर्धन सगठित रूप से करने का यह कारगर तरीका होना चाहिए और अत मे इटेसिव केटल डेवलपमेट प्रोजेक्ट, 'की विलेज' सेटर पूरे देश मे लागू हो जायगे, ऐसी धारणा है। अभी तक जो कार्य हुआ है उसपर से यह नही कह सकते कि सफलता प्राप्त हुई है। अनेक अडचने है। योग्य कार्यकर्त्ताओ का अभाव, उनका मार्ग-दर्शन, साधनो की कमी आदि का प्रभाव तो पडा ही है, किन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि जिनके लिए यह सब किया जाता है उनमे ठीक तौर से उत्साह पैदा नही हो सका और उनका पूरा सहकार भी नही मिला है।

मध्यप्रदेश सरकार के साथ काम करते समय मुझे यह अनुभव हुआ कि 'की विलेज' सेटर के लिए जो साड दिये गए, उनकी खुराक की व्यवस्था की गई, कार्यकर्त्ताओ की व्यवस्था की गई, बछडो तथा दूसरे कामो के लिए अनुदान देने की व्यवस्था की, फिर भी लोग उसे अपना नही सके। थोडे लालच के लिए पशु बेच दिये जाते थे, उन्हे न बेचा जाय, इसकी भी योजना बनी। किन्तु आखिर मे यह काम सब सरकार का है, यही भावना बनी रही। इस बात का प्रयत्न किया गया कि 'की विलेज' का कार्य पशु-सुधार समिति के मार्फत किया जाय और उस समिति का अध्यक्ष कोई स्थानिक व्यक्ति हो, और मन्त्रिपद पशु चिकित्सक

को दिया जाय। स्टाक-मैन रोज के कार्य की देखभाल करे, इससे लोगो मे उत्साह बढा, सस्था के लिए दान देने की वृत्ति वढी, किन्तु आगे चल-कर सरकारी अधिकारियो ने यह कार्य अपने हाथ मे ले लिया और पशु-पालको का उत्साह कम हुआ। अव प्रयत्न किये जा रहे हे कि यह कार्य ग्राम पचायतो को सौप दिया जाय।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे पशु-सवर्धन कार्य को महत्व देने का निर्णय हुआ है। यह माना जाता है कि शहरीकरण के साथ-साथ व्यक्ति-गत आमदनी वढ रही है और उस प्रमाण मे लोगो की एनीमल प्रोटीन के लिए माग वढ रही है, इसलिए इन वस्तुओ का उत्पादन बढाना होगा। योजना मे मुख्य तीन ध्येय रखे गये है। स्वास्थ्य रक्षक अन्न की पैदावार वढाई जाय, श्रमशक्ति वढे तथा उद्योगो के लिए कच्चा माल मिले, इसलिए पशु-सवर्धन को कृषि का एक अविभाज्य अग मानकर उसका सुधार किया जाय। खेती के साथ पशु-पालन जोडने से फसल का पूरा उपयोग होता है, आमदनी वढती है और जमीन का कस सुरक्षित रहता है। साथ-साथ रोजगार देने मे मदद मिलती है। आज जो योजना चल रही है, करीव-करीव वही चालू रहेगी, लेकिन जिससे उत्पादन वढता है, ऐसी योजनाओ को प्रधानता दी जायगी। डेयरियो के साथ इटेसिव केट्ल डेवलपमेट प्रोजेक्ट बैठाये जायगे। नस्ल-सुधार की नीति इस प्रकार होगी कि जहा अच्छी जाति के पशु है वहा पर चुनाव-पद्धति से उन्नति की जायगी और जो पशु किसी भी जाति के नही है, उनका सकर से दूध बढाने का प्रयत्न किया जायगा। पर्वतीय इलाको मे परदेशी नस्ल का उपयोग किया जायगा और दूसरे इलाको मे देशी। तीस नये डेवलपमेट प्रोजेक्ट और सौ नये 'की विलेज सेटर,' २७ वुल डेयरी फार्म और आज जो सरकारी फार्म चलते है उनमे से ६० का विकास किया जायगा। तीन सौ नई गोशालाओ का विकास किया जायगा। परदेशी साडो की पूर्ति करने के लिए दो जर्सी फार्म खोले जायगे। हरयाणा-थरपारकर, गीर, सिंधी, साहीवाल जातियो का फैलाव किया

जायगा ।

यह मानना ही होगा कि पोषण की ठीक व्यवस्था न होने से उत्पादन पर असर पडता है । उत्पादन तथा खपत का अतर कम हो, इसलिए कई योजनाए हाथ मे ली जा रही है । अधुनिक ढग की चारे-दाने की खेती को प्रोत्साहन दिया जायगा । प्रयोगो से कितनी ही नई किस्म की फसले तैयार की गई है । उनके उपयोग से पशु-पोषण सुधरेगा और उत्पादन फायदेमद होगा । इटेसिव केट्ल डेवलपमेट प्रोजेक्ट्स और 'की विलेज' मे घास-चारे का वडे प्रमाण मे उत्पादन किया जायगा । घास-चारे के बीज पैदा करनेवाले ५० फार्म खोले जायगे और २५ मिक्सड फार्मिग युनिट । घास के बीज सुधारे जायगे और जगली घासो का उपयोग ज्यादा प्रमाण मे किया जायगा । जिन इलाको मे अच्छी नस्ल की गाये है, वहा पर पशु-अन्न-उत्पादन के प्रयत्न किये जायगे ।

आठ

# गोशाला-पिंजरापोल

गांधीजी अफ्रीका से हिन्दुस्तान लौटे तभी वह गोशाला-पिंजरापोलो के सुधार के बारे मे सोचते रहे। विदेशी सरकार होने के कारण सब क्षेत्रो मे अधिकारपूर्वक गोसेवा का कार्य करना कठिन था, किन्तु गोशाला, पिंजरापोल आदि सस्थाए सरकार के नियत्रण से बाहर थीं, धनी-मानी गो-प्रेमियो के द्वारा ये सस्थाए चलाई जाती थी इसलिए कार्य की शुरुआत वही से हो सकती है, यह बात देखी गई। बम्बई शहर मे घनी बस्ती के बीच दुधारू पशु रखने के अनेक खानगी मालकी तबेले थे। उनकी व्यवस्था इस प्रकार खराब थी कि अनेक रोग उत्पन्न हो सकते थे। तबेले मे पशुओ को हिलने-डुलने की जगह भी नही थी और दूध से उठ जाने के बाद अच्छे-अच्छे पशु कसाईखाने पहुच जाते थे। इस विषम परिस्थिति की ओर एक जैन साधु का ध्यान गया और उनकी प्रेरणा से घाटकोपर सार्वजनिक जीवदया खाता नाम की एक धर्मादाय सस्था की स्थापना की गई। दूध से उठी हुई गायो और भैसो मुख्यतया भैसो की यह सस्था इन तबेलो से खरीद करती थी और उन्हे गुजरात के अनेक भागो मे किसानो को रियायती दरो पर बेच देती थी। आगे चलकर सस्था ने इन्ही पशुओ मे से छटनी कर अपना ही दूध-उत्पादन-केन्द्र स्थापित करने का निर्णय किया। यह माना जाता था कि धार्मिक भावनाओ से दूध-उत्पादन करने से हिंसा कम होगी और जनता को शुद्ध दूध मिल सकेगा। यह प्रयोग ठीक तरह से चल रहा था, फिर भी उसमे कुछ दोष थे। उनकी तरफ गांधीजी ने ध्यान खीचा। गोशाला तथा

पिजरापोलो के लिए उन्होने कुछ सूचनाए दी

१. ऐसी सस्था वस्ती से वहुत दूरी पर खुली जगह मे होनी चाहिए। वहा घास पैदा हो और पशुओ को घूमने-फिरने को मिले। उत्पादन के लिए उपयोगी जमीन जितनी चाहिए, उतनी रखी जाय और वाकी वेच दी जाय। वदले मे कही खुली जमीन खरीद ली जाय।

२ वडी गोशाला को आदर्श दुग्धालय और चर्मालय वनाना चाहिए। प्रत्येक मरे हुए पशु पर सव सरल क्रिया करके उसका चमडा, हड्डी, आत आदि का पूरा उपयोग करना चाहिए। कत्ल किये हुए पशुओ के चमडे की तुलना मे मौत से मरे हुए पशुओ के चमडे को पवित्र और उपयोग मे लाने लायक मानना होगा। कत्ल किये हुए पशु की हड्डी मे से वनी हुई वस्तु आदमी को, खासकर हिन्दुओ को, उपयोग मे नही लाना चाहिए।

३ वहुत-सी गोशालाओ मे पशुओ का मलमूत्र फेक दिया जाता है। इसको एकदम गुनाह मानना होगा।

४ वडी गोशाला की व्यवस्था उस विषय के शास्त्रीय ज्ञान रखनेवाले आदमियो की देखरेख और सलाह से चलना चाहिए।

५ हरेक गोशाला स्वाश्रयी होनी चाहिए। योग्य व्यवस्था रखने से यह सभव हो सकता है। दान का उपयोग गोशाला-विकास से लिए होना चाहिए। इन सस्थाओ को धन कमानेवाले उद्योग नही वनना चाहिए। जो भी आमदनी हो उसका उपयोग लगडे, लूले, अपग, बूढे पशुओ को पालने तथा कसाईखाने जानेवाले पशुओ को खरीदने मे खर्च कर देना चाहिए। गोरक्षा के मूल मे यह योजना है।

६ जो अपनी गोशालाए भैस, वकरी आदि पालने लगे तो ऊपर वताया हुआ हेतु पार लगाना असभव हो जायगा। ध्येय तो यह हो कि सव प्रकार के पशु वचाये जा सके। किन्तु पूरा हिन्दुस्तान जवतक शाकाहारी नही वनेगा तवतक भेड-वकरियो को हम कसाई से नही वचा सकेंगे और जो हम भैस का दूध लेने का स्वाद छोड दे और धर्म-

बुद्धिपूर्वक उसका त्याग कर गाय के ही दूध को पसन्द करे तो, वे सहज ही बच जायगी। हमे यह नही भूलना चाहिए कि हमारी गोरक्षा की प्रवृत्ति समूची गोमास-भक्षक दुनिया के आगे दया-धर्म की दिशा मे एक महान प्रयत्न

पिजरापोल का प्रश्न जरा कठिन है। हिन्दुस्तान के लगभग प्रत्येक गाव के पास एकाध गोशाला होगी। उनके पास बहुत पैसा होता है, किन्तु व्यवस्था के नाम पर कितना अधेर चलता है। जबतक हम पिजरापोल का सच्चा काम न समझेगे, उसकी मर्यादा न समझेगे तब-तक इस काम मे आज जो पैसा बिगडता है, वह बिगडता ही रहेगा। पिजरापोल का मुख्य काम दूध से उठी हुई बूढी या अपग गायो का, जिनको शहर के लोग सम्हाल नही सकते, पालन करना माना जाता है। शहर मे तो ऐसी गायो का पालन असभव है। पिजरापोल का काम दूध पूरा करने का नही है। हा, यदि वे चाहे तो दुग्धालय का अलग गोशाला विभाग रखे, किन्तु इनका मुख्य काम तो बूढे और अपग पशुओ को सभालना है और चर्मालय के लिए कच्चा माल पाना है। हरएक पिजरापोल के पास पूरी सामग्रीवाला एक चर्मालय होना चाहिए। पिजरापोलो मे ऊची जाति का साड रखना चाहिए और उनका उपयोग लोगो को मिलना चाहिए। यदि इन साडो को बैल बनाना हो, तो दया-भावना या वैज्ञानिक पद्धति से खस्सी करने का साधन रखना चाहिए और इन सस्थाओ को किसान तथा दुग्धालय चलानेवालो का शिक्षण-केन्द्र बनना चाहिए। इस काम मे दुग्धालय तथा कृषि-डिग्री रखनेवालो के लिए बहुत जगह है।

अपग पशुओ की रक्षा से सम्बन्धित एक गोसेवक ने गाधीजी से पूछा था कि पिजरापोलो की स्थापना मूलत दूसरी ही भावना से की गई थी। इसका हेतु अपग पशु, जिनका कोई पालन नही करता, उनका पालन-पोषण करना है। दूध देनेवाले पशुओ का पालन तो लोक-स्वार्थ के लिए भी लोग कर लेगे। आपकी योजना मे अपग अथवा दूध से उठे

पशुओ को स्थान हे या नही, यह वराबर समझ मे नही आता। कितनो की ही यह मान्यता हे कि जितना खर्च अपग पशु पालने पर होगा उतना ही धन दूध के पशुओ को कम मिलेगा। क्या आप भी यही मानते हे, और यदि हा, तो जीवदया का क्या अर्थ है ? जिस प्रकार हम अपने अपग मा-वाप का त्याग नही करते, उसी प्रकार जिदगी-भर सेवा करनेवाले पशु जव सेवा करने लायक नही रहते, तो उनका भी त्याग हमे नही करना चाहिए।

इसके उत्तर मे गाधीजी ने कहा था, "यह प्रश्न उठता ही नही है, क्योकि अपग पशुओ को मार देने की मुझसे कल्पना नही की जाती। मैं मानता हू कि इस प्रकार के प्राणियो की रक्षा करने का हमारा सवका कर्त्तव्य हो जाता है। किन्तु इतने से ही जीव-दया की वात पूरी नही होती। गोरक्षा का अर्थ बहुत विशाल है और केवल दूध देनेवाले पशुओ की रक्षा करके ही हम गाय-भैसो के प्रति अपना धर्म पूरा कर नही सकते।

गोरक्षा का अर्थ है पशु-मात्र की जो अनावश्यक हत्या आज चल रही है, उसे धार्मिक तरीके से यानी बगैर कोई नुकसान पहुचाये रोकना। आज तो हमारे अज्ञान के कारण अथवा धर्माधता के कारण हमने उसका वहुत सकुचित अर्थ कर रखा है। उस कारण नजर के आगे होनेवाली अनावश्यक हत्या को देखते और सहन करते हे। थोडी समझ से, अल्प त्याग से, व्यवहार-ज्ञान प्राप्त कर हम असख्य गाय-भैसो को वचा सकते है और हिन्दुस्तान के धन की रक्षा कर सकते है। इस रक्षा मे दूध देने-वाले पशु तो सहज ही वच जाते है। हमारे दूध न देनेवाले पशु हमे वोझरूप होते है और इस कारण उसकी खरी रक्षा नही हो सकती। यही करना ठीक होगा। जव हम इस प्रश्न का ज्ञानपूर्वक हल निकालेगे तभी इस प्रकार के पशुओ की रक्षा सुन्दर रीति से होगी, यह मेरा दृढ विश्वास है।" (नवजीवन १३-६-२६)

आगे चलकर ९ सितम्वर,'२८ के 'नवजीवन' मे पिजरापोल के कार्य

संबधी चर्चा की गई है। भारतवर्ष के गाय-बैलो के सुधार करने की अनेक रीति मे पिंजरापोलो का सुधार करना भी एक है। जब भारत मे गाय-बैल सीमित सख्या मे और पुष्ट थे और जब जीवन-सघर्ष आज जैसा कठिन नही हुआ था उस समय अपने पिंजरापोल अपग और दुखी पशुओ के अस्पताल थे। वह योग्य ही था। मगर अब जब जमाना बदल गया है तो अपग पशु रखने से ही कार्य समाप्त नही होता। वे खास खर्चे मे पडे बगैर सवर्धन का कार्य सहज हाथ मे ले सकते है।

अब तो सब कबूल करते है कि गाय के दूध देने की शक्ति का विकास करना, उसमे ज्यादा मजबूत बच्चे पैदा करने की ताकत बढाना, यही गोरक्षा का उत्तम मार्ग है और यह कार्य पिंजरापोल सहज कर सकते है। उनके पास धन है, लोग भी है, किंतु उनके पास पशु-सवर्धन के शास्त्रीय ज्ञान का अभाव है।

पिंजरापोलो मे अच्छी सख्या मे गाये होती है। उनमे से उत्तम प्रकार की गायो को अलग कर उनका सवर्धन ऊची जाति के साडो से करना चाहिए। इस प्रकार पैदा हुए बछडो को साड बनाने के लिए पाला-पोसा जाय और फिर देहातो मे भेज दिया जाय। देहातो मे जो साड हल्के प्रकार के होते है उनको खस्सी कर देना चाहिए। पिंजरापोल के दूसरे बछडो को खस्सी कर किसानो को दे देना चाहिए। अच्छी बछडियो का पालन कर वे सब गाये बने, इस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिए।

जिन पिंजरापोलो मे अच्छी गाये न हो, वहा कसाईखाने जानेवाली हजारो गायो मे से चुनिन्दा गाये जमा की जाय। जो गाये अच्छे बछडे पैदा करने के लायक न हो, उन्हे अलग रखकर उनका प्रजोत्पादन रोक देना चाहिए। जिन पिंजरापोलो मे बछडो के उपयोग से अधिक दूध होता हो, तो पिंजरापोल दुग्धालय खोलकर शुद्ध और सस्ता दूध पैदा करे। इस प्रकार पिंजरापोलो की आवक बढेगी और अत मे वे स्वाश्रयी होगे।

पिंजरापोलो के पास पूरी जमीन हो तो उसमे पशुओ के मूत्र,

गोबर और मृत पशुओ की हड्डी आदि का अमूल्य खाद बन सकेगा और उससे घास के बदले अच्छा कीमती चारा या कड्बी उगाई जा सकेगी और पशुओ को सुन्दर स्थिति मे रखा जा सकेगा। गोचर भूमि कम हो रही है, जमीन की कीमत बढ रही है, इसलिए जिन पिंजरापोलो मे व्यवस्थापक समझदार हो, वहा घास-चारा उगाने का धर्म अनिवार्य हो जाता है।

कितनी ही जगह पशु को खस्सी किये बगैर रहने दिया जाता है और उनका उपयोग बैल की तरह नही होता। यह एक बडी गलती है। उसे सुधारने मे पिंजरापोल एक बडा हिस्सा ले सकते है। जहा-जहा चराऊ जमीन पडी है, वहापर थोडे खर्चे से ज्यादा पोषक खुराक उत्पन्न की जा सकती है। दूसरे, गरीबी के कारण जो कुटुम्ब टूट जाते हैं उनके पशु या तो पिंजरापोल आते है या कसाईखाने मे जाते हैं, इसलिए पिंजरापोलो मे इस प्रकार के पशुओ के लिए चारे का सग्रह करने की उक्ति समझ लेना चाहिए और यह चारा उन्हे दे देने के बजाय जिनके पास बाजार-भाव से दाम देने की शक्ति न हो उन्हे कम खर्च मे दिया जा सकता है। इसके कारण पशुपालको की एक बडी सेवा होगी और पिंजरापोल ऐसे कार्य व्यवस्थित रूप से कर सकेगे।

जहा पिंजरापोलो मे सभव हो वहा पशु वैद्य नियुक्त करे, दवा का सग्रह रखे। इससे पिंजरापोल के पशु सुखी रहेगे। इस सुविधा का लाभ गाय-बैल आदि रखनेवालो को भी मिले।

पिंजरापोल से मृत पशुओ को आज तो वैसे ही दे देते है। उसके बजाय वहा चमडे का सग्रह किया जा सकता है। चर्मालय चलाया जा सकता है। इससे पशु-रक्षा के लिए लाखो रुपये बचेगे।

सब लोग जानते है कि पिंजरापोलो का कारोबार सज्जन महाजनो के हाथ मे होता है, किन्तु उन्हे बारीकी से देखने का समय नही होता। और यदि समय हो तो भी शक्ति नही होती। पढे-लिखे तथा धनिक वर्ग के बीच मे सहकार अगर साधा जाय तो पशुपालन तथा पशु-सवर्धन

लिए पिंजरापोल एक महाशक्ति रखनेवाला साधन बन सकता है। आज तो साहस और कार्यदक्षता की जरूरत है। उम्मीद रखी जाती है कि पिंजरापोल के व्यवस्थापक अपनी जिम्मेदारी समझेगे। . . .

गोशाला पिजरापोल के कार्य-क्षेत्र का विस्तार किया जा रहा है और जब इन सस्थाओ का किसानो मे सबध आयेगा तो कार्य भी बढेगा और गोसेवा-कार्य मे चुस्ती आ सकेगी।

१९५४-५५ मे परिषद की ओर से भारत की गोशालाओ तथा पिंजरापोलो का एक परीक्षण किया गया। उसके अनुसार भारत मे १०६८ बडी गोशालाए तथा पिंजरापोल है। उनमे १ ३२ लाख गो-पशु रखे जाते है। इनमे से ६२ प्रतिशत उत्पादन देने योग्य पशु है। इन सस्थाओ के पास चराई के लिए १०९७ ७० एकड जमीन है, ४५,४०० एकड़ खेती के लिए तथा १७२० एकड जमीन अन्य काम के लिए है। इन सस्थाओ की वार्षिक आय करीब २ करोड रुपये कही जाती है। इसमे से करीब ६४ प्रतिशत उत्पादन से तथा ३६ प्रतिशत धर्मादाय तथा चदे से होती है। इन सस्थाओ का वार्षिक व्यय २०७ लाख रुपये आका गया है। इस खर्चे मे ५५ प्रतिशत चारे आदि का, २२ प्रतिशत वेतन मजदूरी, ८ प्रतिशत भूमि-विकास और १५ प्रतिशत अन्य मदो मे खर्च होता है। इस सर्वेक्षण से इस प्रश्न का महत्व सहज सामने आ सकता है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सरकार का ध्यान इस प्रश्न की ओर गया। तब से गोशालाओ का विकास हो, इस-सबधी अनेक उपाय किये गए। प्रत्येक राज्य मे गोशाला-विकास के लिए एक फेडरेशन कायम किया गया और पशु-सुधार तथा दूध की वृद्धि के लिए सहायता दी जाने लगी। इसलिए पशुपालन विभाग के अन्तर्गत गोशाला-विकास की योजनाए बनी। अनेक राज्यो मे गोशाला-विकास का कार्य हुआ है। गुजरात राज्य के मूल्याकन से पता चलता है कि थोडी-सी मदद देने पर और योग्य मार्गदर्शन से दूध का उत्पादन बढा है। वश-सुधार के लायक पशु पैदा हो पाये है। इस कार्य मे प्रगति हो, इस हेतु एक योजना

परिषद की ओर से तैयार की गई है। उसके अनुसार गोशाला के अपने सुधार के अतिरिक्त अच्छे साड रखकर गोपालको की गायो की नस्ल सुधारना, दूध उचित भाव से खरीदकर शहरवालो को मुहैया करना, इसके लिए गोरस भडार चलाना, अच्छी बछिया तैयार करना, अच्छे साड तैयार करना, हरे चारे का प्रसार करना, इत्यादि को उस योजना मे रखा गया है। गोशाला-विकास-योजना के अन्तर्गत १९६०-६१ तक कुल २५५ गोशालाए ली गई थी। तीसरी पचवर्षीय योजना मे १९८ गोशालाए लेने की बात थी, किन्तु १९६३-६४ तक ५७ ली गई।

गोशाला तथा किसानो पर अनुपजाऊ पशुओ का बोझ कम हो, इस हेतु गोसदन की योजना चालू की गई है। कुछ गोसदन सरकार की ओर से चलाये जाते है और जो सस्थाए अपने खानगी गोसदन चलाना चाहे उन्हे अनुदान आदि की व्यवस्था की गई है। मृत पशुओ का पूरा उपयोग तथा अयोग्य पशुओ का प्रजनन रोकना अनिवार्य माना गया है। चराई की जमीन, मकान आदि के लिए अनुदान, पशु एकत्र करने के लिए व्यवस्था आदि का गोसदन-योजना मे समावेश किया गया है। १९६०-६१ तक ६१ गोसदन खोले गये थे। तीसरी योजना मे २३ नये खोलने को थे। उसमे से केवल ८ ही १९६४ तक खोले जा सके। लगता है कि यह योजना खास प्रगति नही कर सकी। चर्मालय गोसदन का एक अग है, इसकी ओर ध्यान नही दिया गया। राज्य सरकार के पशुपालन विभाग इस कार्य को अभीतक महत्वपूर्ण नही मानते और सार्वजनिक सस्थाए तो अलग ही रही है। व्यवस्थित देखभाल तथा शास्त्रीय मार्ग-दर्शन मिलने से गोशाला तथा गोसदन काफी प्रगति कर सकेंगे और पशु-कल्याण कार्य मे मदद दे सकेंगे। किन्तु एक बात अखरती है। गाधीजी की इच्छानुसार स्वावलम्बन की ओर जाने के बजाय वे अब सरकार की सहायता-अनुदान पर ज्यादा अवलम्बित होती जाती है और अनुदान की मात्रा बढे, इसकी फिक्र मे रहती है। दानी लोग यह समझने लगे है कि यह काम सरकार का है, इस कारण दान की वृत्ति कम होती जा रही

हैं। सरकारी अधिकारी इसे प्रतिद्वद्वी भाव से देखते है। हमे लगता है कि ये दोनो योजनाए गोसवर्धन परिषद को अपने हाथ मे लेनी चाहिए। उन्हे स्वावम्वन के रास्ते चलकर गोसेवा का एक महत्वपूर्ण अग बनाना चाहिए। केवल सरकार पर अवलम्बित रहकर यह कार्य पूरा नही होगा। गोवव-वदी के कार्यक्रम मे इन योजनाओ का काफी योग हो सकता है।

# गोवध-निषेध

जिस समाज ने उपयोगिता के कारण गोपशु को माता का स्थान दिया, ऋद्धि-सिद्धि की जननी माना, वह समाज गोहत्या सहन नही कर सकता। किन्तु गुलामी की अवस्था मे भारतीयो को गोवध सहन करना ही पडता था। शक्तिशाली न होने से राजसत्ता पर प्रभावकारी असर नही पड सकता था। इस कारण गोरक्षा-कार्य केवल पिंजरापोल आदि मे अपग, असहाय पशुओ का पालन करना, कसाईखाने जानेवाले पशु छुडाना इतना ही माना जाता था। ऐसी अवस्था होते हुए भी गाय के लिए बलिदान देनेवाले निकले। इसीका लाभ उठाकर देश के हिन्दू-मुसलमानो मे अग्रेज शासक फूट डालते रहे।

गोवध का अर्थ इतना ही लगाया जाता था कि गोपशु को कसाई की छुरी से बचाना। अहिन्दुओ को गोमांस न खाने देना। गाय को पवित्र माननेवाले उसपर कितना सितम ढाते है, उन्हे भूखो मारते है, उनकी तरफ किसीका ध्यान न था। कसाई को गाय बेचनेवाले तथा दूध का व्यापार करनेवाले भी तो हिन्दू ही है। उनका भी गोधन के ह्रास मे हिस्सा है, यह समझ मे नही आता था। कायदे-कानून से गो-वधबंदी की भी बाते होती रही, किन्तु उनका कुछ ज्यादा असर नही हुआ।

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद परिस्थिति मे परिवर्तन हुआ। गोवध-निषेध आदोलन ने जोर पकडा। सभाए होने लगी, सत्याग्रह शुरू हुए, लोग जेल मे जाने लगे, नेताओ ने आमरण अनशन शुरू किये। सरकार पर

दबाव डाला गया । परिणामस्वरूप देश के सविधान मे भारतीय भावनाओ का ध्यान रखा गया और अनुच्छेद ४८ के अनुसार गोवध को निषिद्ध माना गया ।

किन्तु क्या केवल कानून बन जाने से काम चल सकेगा ? कितने ही राज्यो मे कानून है, उनका क्या असर होता है ? कानून से बचने के लिए उपयोगी पशुओ को अपग कर दिया जाता है, होनहार पशुओ को मुक्त छोड दिया जाता है । जहा गोवध-बदी नही है, वहा चोरी से भेज दिया जाता है । धन के अभाव मे गोशाला पिंजरापोल आदि सस्थाए पनप नही रही है । गोसदन खाली पडे हे । शहरो का दुग्ध व्यवसाय, गोसवर्धन कार्य मे अडचन बनता जा रहा है । क्या यह सब गो-प्रेम का द्योतक है ? किन्तु इस विषम परिस्थिति का यह अर्थ करना कि गोहत्या चलती रहे, बिलकुल गलत होगा । गाय को पवित्र माननेवाले इसे सहन नही करेगे ।

कितने ही लोग मुसलमान, ईसाई आदि गाय को पवित्र नही मानते । उनकी धारणा है कि उनके धर्म मे गो-हत्या का स्थान है । भारत अपने को धर्मनिरपेक्ष मानता है और अहिन्दू लोग कभी-कभी सोचते है कि क्या गोहत्या-विरोध उनके धर्म के विरुद्ध नही है ? क्या हिन्दू जबर्दस्ती अपनी भावनाए उनपर लादेगे ? इसका तो यह अर्थ हुआ कि इस मामले मे वे उन्हे हिन्दू बनाना चाहते है । यदि इस प्रकार की भावनाए देश मे फैलती रही तो हिन्दू-अहिन्दू के साथ प्रेम से कितने दिन तक साथ रह सकेगे, इसका भी विचार करना होगा । सच्चा मार्ग तो यह होगा कि हम इन लोगो को प्रेमपूर्वक गाय का महत्व समझाए, हमारे आर्थिक ढाचे मे उसका कितना बडा स्थान हे, यह बताये और जिन गायो को निकम्मी माना जाता हे, उसका भार स्वय अपने ऊपर ले । यदि प्रेमपूर्वक यह सब किया गया तो कोई कारण नही कि केवल हिन्दुओ को चिढाने के लिए ही गोहत्या देश मे चलती रहे ।

कानून द्वारा गोहत्या बन्द हो सकती है, कारण हमारी ससद मे

बहुमत हिन्दुओं का रहेगा, किन्तु केवल कानून बनने से काम पूरा नही होगा। जबतक गाय स्वावलम्बी नही होती और बोझरूप होती जायगी तबतक दुनिया की कोई भी शक्ति इसे बचा नही पायगी। इसलिए कानून का आग्रह रखते समय गाय को हमारी समाज-व्यवस्था मे कैसे स्थिर रखा जा सकता है, इसका विचार करना होगा। आज मृत गाय जीवित गाय से ज्यादा फायदेमंद है, इसलिए उसका वध होता है। उप-जाऊ गायो के वध की कोई बात नही करता। इस बात का प्रयत्न किया जाय कि जीवित गाय इतनी शक्तिशाली हो कि उसका वध आर्थिक दृष्टि से किसीको पोषक नही हो। इस संबंध मे गांधीजी ने कुछ सूचनाएं दी है

"मुझे यह पसन्द नही कि धार्मिक मामलो के बीच मे सरकार पड़े। हिन्दुस्तान मे गाय का प्रश्न धर्म और अर्थ दोनो के साथ है। आर्थिक दृष्टि से ही सोचे तो मुझे शक नही कि हर हिन्दू या मुसलमान राज्य का यह फर्ज है कि वह अपने यहां पशुओ की रक्षा करे। लेकिन आपके सवालो का मैने ठीक अर्थ समझा हो, तो उनका तात्पर्य यह मालूम होता है कि हिन्दू और मुसलमानो के बीच मे पड़कर जिस कार्य को मुसलमान धार्मिक मानते है, उसके लिए होनेवाले गोवध पर कोई प्रतिबंध लगाने का राज्य को अधिकार है या नही? हिन्दुस्तान जैसे देश को, यही जन्मे हुए हिन्दुओ का ही नहीं, बल्कि यहां जन्मे मुसलमान, ईसाई और सभी लोगो का देश मानता हूं। ऐसे देश मे हिन्दू राज भी अपनी प्रजा

दिल दुखाने के लिए गोवध किया जाता है। ऐसा गोवध तो हर राज्य को जिसे अपनी प्रजा के लिए जरा भी खयाल हो, वद करना ही चाहिए।

"लेकिन मेरी राय के अनुसार गोरक्षा का प्रश्न बराबर समझ लिया जाय, तो उसमे धर्म का नाजुक सवाल भी अपने-आप हल हो जायगा। गोवध आर्थिक तरीके से ही असभव होना चाहिए और असभव किया जा सकता है, हालाकि दुर्भाग्य से हिन्दुस्तान ही ससार मे ऐसा देश है, जहा हिन्दू जिसे पवित्र मानते है उसी पशु की हत्या सस्ती-से-सस्ती हो चली है।

१ बाजार मे विकने आनेवाली तमाम गाये ज्यादा-से-ज्यादा कीमत देकर राज्य खरीद ले।

२ राज्य अपने सब मुख्य शहरो मे दुग्धालय खोलकर दूध वेचे।

३ राज्य चर्मालय स्थापित करे और वहा अपने तमाम निजी ढोरो की हड्डी-चमडी वगैराह का उपयोग करे और प्रजा के ढोरो मे से तमाम मरे हुए ढोर भी खरीद ले।

४ राज्य नमूने की पशुशालाए रखे और पशुओ की नसल सुधार और उनके पालन की कला का लोगो को ज्ञान दे।

५ सरकार विशाल गोचर-भूमि की व्यवस्था करे और गोरक्षा का शास्त्र लोगो को समझाने के लिए उत्तम-से-उत्तम विशेषज्ञो की सेवा प्राप्त करे।

६ इसके लिए खास महकमा कायम करे और इससे मुनाफा कमाने का विलकुल विचार न रखते हुए यही उद्देश्य रखे कि पशुओ की अलग-अलग नसल मे और उनकी रक्षा आदि के हर विषय मे समय-समय पर होनेवाले सुधार का लोग पूरा-पूरा लाभ उठाये।

"इस योजना मे यह तो आ ही जाता है कि तमाम बूढे, लूले, लगडे और रोगी पशुओ की रक्षा राज्य को ही करनी चाहिए। वेशक यह, बोझ भारी है, लेकिन यह बोझ ऐसा है, जिसे हर राज्य को और खासकर हिन्दू राज्य को तो उठाना ही चाहिए। इस प्रश्न के अध्ययन

पर से मेरा तो यह खयाल है कि शास्त्रीय ढग से दुग्धालय और चर्मालय चलाये जाय तो खाल देने के सिवा और तरह से आर्थिक दृष्टि से निकम्मे जानवरो का राज्य निर्वाह कर सकेगा। इतना ही नही; बल्कि बाजार-भाव से चमडा, चमडे का सामान, दूध, घी और मक्खन वगैराह और मरे हुए जानवरो से जो कुछ खाद आदि निकल सकता है वह भी बेच लेगा। शास्त्रीय ज्ञान के अभाव से झूठी भावनाओ के मारे ये सब चीजे प्राय. बेकार जाती है या उनसे अधिक लाभ नही उठाया जाता।

"लेकिन मेरे पत्र मे जो लिखा है और उस साप्ताहिक मे कई बार जोर देकर बताया गया है, उसे जरा अधिक स्पष्ट करने की जरूरत है। वह यह कि कानून बनाकर गोवध बंद करने से गोरक्षा नही हो जाती। यह तो गोरक्षा के काम का छोटे-से-छोटा भाग है। लेकिन मेरे पास जो पत्र आते है और बहुतेरी गोरक्षा-सभाओ की प्रवृत्तियो को जहातक मैं जानता हू, उनसे मालूम होता है कि वे तो कानून से ही संतोष मान लेंगे। इन सब मण्डलो को मैं यह चेतवानी देना चाहता हू कि कानून पर ही आधार बाधकर न बैठ जाय। क्या कानून के जाल मे फसे हुए इस देश मे अभी और कानून की गुजाइश है ? लोग ऐसा मानते दीखते है कि किसी भी बुराई के विरुद्ध कोई कानून बना कि तुरन्त वह किसी झझट के बिना मिट जायगी। ऐसी भयकर धोखाधडी और कोई नही हो सकती। किसी दुष्ट बुद्धिवाले अज्ञानी या छोटे-से समाज के खिलाफ कानून बनाया जाता है, तो उसका असर भी होता है, लेकिन जिस कानून के विरुद्ध समझदार और सगठित लोकमत हो या धर्म के बहाने से छोटे-छोटे मडल का भी विरोध हो, वह कानून सफल नही होता।

"गोरक्षा के प्रश्न का जैसे-जैसे मैं अधिक अध्ययन करता जाता हू वैसे-वैसे मेरा दृढ मत होता जाता है कि गावो और वहा की जनता की रक्षा तभी हो सकती है, जबकि मेरी ऊपर बताई हुई दिशा मे निरतर प्रयत्न किया जाय। ऊपर मैंने रचनात्मक कार्यक्रम की जो रूपरेखा बताई है, उसमे सुधार या कमी-बेशी करने की गुजाइश हो सकती है

भेद शायद है, लेकिन इसमे शका नही होनी चाहिए कि हिन्दुस्तान के पशुओं को नाश से बचाना हो, तो वह विस्तृत रचनात्मक कार्यक्रम के बिना असभव है और पशुओ की रक्षा हिन्दुस्तान के उन करोडो भूखो मरते स्त्री-पुरुषो की रक्षा की पहली सीढी है, जिनकी दशा भी हमारे जानवरो जैसी हो गई है।

"इस प्रकार राजा और प्रजा पशुपालन मे दूध पूरा पहुचने के सवाल मे और मुर्दा जानवरो का उपयोग करने मे लोक कल्याण के लिए सहयोग न करे तो गोवध के खिलाफ कितने ही कानून बन जाने पर भी हिन्दुस्तान के ढोर कसाई के हाथो बेमौत मरने के लिए ही पैदा होगे। जब हिन्दुस्तान के पुरुषो और स्त्रियो को प्रभु के दरबार मे हाजिर होना पडेगा तो सफाई मे कुदरत के कानून का अज्ञान नही माना जायगा।"

गाधीजी की इन बातो का अध्ययन करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि आज की परिस्थिति मे राज्य को सब बूढे, अपग पशुओ पर कब्जा कर लेना चाहिए और उनकी देखभाल की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। गोसदन योजना के पीछे यही भावना है, किन्तु इस प्रकार की योजना करने मे धन की काफी जरूरत रहेगी और गरीब भारत यह धन कहा तक जुटा सकेगा, इसका भी विचार करना होगा। इस सबधमे गाधीजी ने एक और सुझाव दिया है। यदि दुग्धालय तथा चर्मालय का धधा शास्त्रीय ढग और सेवाभाव से किया जाय, मलमूत्र का खाद के लिए उपयोग किया जाय, पाई-पाई का विचार किया जाय तो इस व्यवसाय को स्वावलम्बी बनाया जा सकता है, उसकी आमदनी से कितने ही अपग पशु पाले जा सकते है। गो-प्रेमी दानवीर सज्जनो से दान भी प्राप्त किया जा सकता है। वह व्यवसाय देश के लिए जरूरी है और अनेक कारणो से इसकी उपेक्षा की गई है। इसलिए उसे सरक्षण देना ही होगा तभी गाय बच सकेगी।